

एम.ए. भाग - दो

प्रश्न पत्र २ : आधुनिक काव्य

व्याख्या - विवेचन हेतु निर्धारित पाठ्य-पुस्तकें

- | | |
|--|---|
| १) कामायनी - जयशंकर प्रसाद, | (चिंता, लज्जा एवं आनंद सर्ग)
प्रकाशन संस्थान दिल्ली - २५. |
| २) राग-विराग - सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' | सरोज स्मृति, राम की शक्ति पूजा,
तोड़ती पत्थर, कुकुरमुला। |
| ३) चांद का मुंह टेढ़ा है - मुक्तिबोध
भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली | भूतपूर्व विद्रोही का आत्मकथन, अंधेरे में, |
| ४) कितनी नावों में कितनी बार-अज्ञेय
भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली | कितनी नावों में कितनी बार, ओ निःसंग
ममेत्तर अंधकार में जागनेवाले युद्धविराम,
यात्री |
| ५) कुरुक्षेत्र - रामधारी सिंह 'दिनकर' | तीसरा एवं चौथा सर्ग
राजपाल एंड सन्स, दिल्ली - २५ |
| ६) नये इलाके में - अरुण कमल | नये इलाके में, हार, बात, अभिसार, श्राद्ध
का अन्न, जागरण, दाना, घोषणा, आत्मा
का रोकड, श्रद्धांजलि, हमारे युग का नाटक
जरब बिरववै जारिका। |

संदर्भ ग्रंथ :

अज्ञेय : एक अध्ययन - भोलाभाई पटेल

अज्ञेय : कवि और काव्य - डॉ. राजेंद्र प्रसाद

अज्ञेय : प्रकृति काव्य, काव्य प्रकृति - संजय कुमार

कविता और समय - अरुण कमल

नई कविता : निराला अज्ञेय और मुक्तिबोध - विद्या सिन्हा

निराला के काव्य का राजनीतिक संदर्भ - डॉ. संध्या सिंह

समकालीन हिंदी कविता : अज्ञेय और मुक्तिबोध के संदर्भ में - शशि शर्मा

कामायनी की अलंकृति और अर्थ सौष्टव - अलका शर्मा

कामायनी : एक पुनर्विचार - ग. मा. मुक्तिबोध
 निराला कृति से साक्षात्कार - नंदकिशोर नवल
 निराला - रामविलास शर्मा
 मुक्तिबोध की काव्यदृष्टि - डॉ. सुरेश रितुपर्ण
 मुक्तिबोध : कविता व जीवन - विवेक - चंद्रकांत देवताले
 निराला और मुक्तिबोध : चार लंबी कविताएँ - नंदकिशोर नवल
 प्रसाद का काव्य - प्रेम शंकर
 मुक्तिबोध की कविताई - अशोक चक्रधर
 कामायनी की आलोचना प्रक्रिया - डॉ. गिरिजा राय
 हिंदी काव्य का इतिहास - डॉ. रामस्वरुप चतुर्वेदी
 आधुनिक हिंदी कविता का इतिहास - हेतु भरद्वाज
 आधुनिक कविता और युग संदर्भ - शिव कुमार मिश्र
 कामायनी का पुनर्मूल्यांकन - डॉ. रामस्वरुप चतुर्वेदी
 प्रसाद - निराला - अज्ञेय - डॉ. रामस्वरुप चतुर्वेदी
 जयशंकर प्रसाद - नंददुलारे वाजपेयी
 कवि निराला - नंददुलारे वाजपेयी
 प्रसाद काव्य में बिम्बविधान - डॉ. रामकृष्ण अग्रवाल
 कामायनी की आलोचना प्रक्रिया - डॉ. गिरिजा राय
 कामायनी की टीका - विश्वंभर मानव
 कामायनी भाष्य - डॉ. युगेश्वर
 अज्ञेय काव्य में प्राग्बिंब और मिथक - डॉ. सी. एम. राजन
 जयशंकर : एक पुनर्मूल्यांकन - विनोद शाही
 निराला : एक पुनर्मूल्यांकन - सं. ए. अरविंदाक्षन
 निराला का काव्य - डॉ. बच्चन सिंह
 अज्ञेय का काव्य - प्रणय कृष्ण
 निराला काव्य की छबियाँ - नंदकिशोर नवल
 निराला कवि-छवि - नंदकिशोर नवल
 मुक्तिबोध की कविताएँ : बिंब प्रतिबिंब - नंदकिशोर नवल
 धूपछाँही दिनकर - डॉ. शंभूनाथ
 दिनकर : व्यक्तित्व और रचना के आयाम - सं. गोपाल राय, सत्यकाम

अंधेरे में : विभिन्न व्याख्याएँ - सुमनिका सेठी
शताब्दी पुरुष निराला - सं. डॉ. रामजी तिवारी
अज्ञेय : कविकर्म का संकट - कृष्णदास पालीवाल
युगकवि निराला - डॉ. कृष्णदेव झारी
मुक्तिबोध की कविता और चिंतन का मूल्यांकन - डॉ. सुधा अग्रवाल
कविता की वापसी और अरुण कमल का काव्य - विधि शर्मा
कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ - डॉ. नगेंद्र
कामायनी विमर्श - हरिचरण शर्मा
कविता के नये प्रतिमान - नामवर सिंह
कविता का उत्तर जीवन - परमानंद श्रीवास्तव
समकालीन हिंदी कविता - ए. अरविंदाक्षन



कामायनी - जयशंकर प्रसाद

राग-विराग - सुर्यकांत त्रिपाठी
निराला

चाँद का मुहँ टेढ़ा है- मुक्तिबोध

लेखक - प्रो. रतनकुमार पाण्डेय

कामायनी का मनोविज्ञान

१) चिंता सर्ग :

I) मनु के चिंता कातर चित्र को कवि ने सर्वप्रथम प्रस्तुत किया है। हिमालय के ऊँचे शिखर पर बैठे मन विस्फारित नेत्रों से जल-प्लावन का दृश्य देख रहे। इस भीषण विनाश के बीच बैठकर चिंता कातर होने के अतिरिक्त मनु और कर ही क्या सकते? इस अप्रत्याशित प्रकृति कोप ने उन्हें स्तब्ध और नितांत निरुपाय बना दिया है इस नवीन परिवेश के कारण चिंता की पहली रेखा खिंच उठती है।

II) मनु के मन में सुप्त अन्त : चेतना का जागना :

टोकर लगने पर आँख खुल जाती है। अतएव मनु की अन्त : चेतना इस झटका के कारणों की समीक्षा में स्वतः प्रवृत्त हो उठती है, उसे भान होने लगा कि प्रकृति के इस कोप का कारण देवासुर सृष्टि की कोई न कोई त्रुटि ही रही होगी। इस दिशा में सोचने पर मनु के मानस में देवासुर जीवन के कई दोष उभर आये और मनु ने उन्हीं दोषों को प्रलय का कारण माना।

III) देवताओं का निर्बाध भोग :

अपने को आराध्य या भोक्ता शेष विश्व को आराधक या भोग्य मानने के कारण देवजाति अन्ततः भोगवादी बन उठी थी, भोग भावना निरंतर बलवती होती जाती है। रुकना तो जानती ही नहीं चिर अतृप्त और निर्बाध भोग ही प्रलय का तात्कालिक कारण है – ऐसा मनु ने सोचा था।

IV) भोगी भोग को छोड़कर अन्य सभी की उपेक्षा कर सकता है भोग ही उसका लक्ष्य होता है। भोगवादी काम अग्नि की ज्वाला के ही समान होता है। वह अपने आधार को ही जलाता रहता है “देव बासना के प्रतिनिधि थे” अपनी काम ज्वालाओं में जलते रहे और फिर प्रलय में सर्वदा के लिए समाप्त हो गये।

V) देवासुर संस्कृति में हिंसातिरेक :

यज्ञ में निर्दोष पशुओं की बलि इसी का विस्तारवादी रूप अपने भोग के लिये अन्य की हिंसा करना वासना के विकृत होने का प्रमाण है। विकृत काम हिंसा को जन्म देता है। इसलिये विवेकवान व्यक्ति इस काम की निंदा करते हैं।

२) आशा :

मनु की मनःस्थिति का बोध कराने के लिए यह सर्ग रचा गया है।

I) प्रलय निशा बीत गई :

विभीषिका और चरम रम्यता की संधि रहस्य भावना की जननी होती है, जिसकी आँखों के सामने अपनी संपूर्ण शून्यता, विषाद लेकर पतझड़ खड़ा था। वह सहस्र वसंत के संपूर्ण उल्लास, कलख कांति से दीप्ति सुरभि-संसार को देखकर हैरान नहीं तो और क्या होगा ? मनु का चित्त इसी अनुभूति की जिज्ञासा से बोल उठा – कौन ? हुआ यह प्रश्न अचानक / और कुतूहल का था ?

II) मनु प्रखर विलासमयी जीवन की लालसा के उद्वेलन के कारण जीवन में प्रवृत्त तो हुए किंतु उन्हें न तो गतंव्य का बोध था और न उनके सामने कोई निर्दिष्ट मार्ग था। अतएव जीवन के किसी निर्दिष्ट लक्ष्य के अभाव में उनके लिए जीवनयात्रा का केवल एक मार्ग था, जिस देव संस्कृति में वे पले थे उसके अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार की संस्कृति उनके लिए अज्ञात थी। इधर संसार को चक्र नूतन-निर्माण कर रहा था। अतएव स्वभावतः देवसंस्कृति के सर्वथा उदात्त मार्ग का अवलंब लेना कल्याणकारी समझा। इस समय देवों की उद्दाम वासना के मनु में उभरने का अवसर नहीं था।

यद्यपि वे तप निस्त थे, फिर भी उनका हृदय अनिष्ट की आशंका या इस भय से कि न जाने क्या होने वाला है ? निरंतर घड़का करता था। उनका अस्थिर जीवन प्रतिक्षण वेदनाभिभूत होता रहा।

III) वासना :

जीवन मार्ग में चाहे तप के सहारे प्रवृत्त हो या भक्ति के वासना का उसमें जागृत होना प्राकृतिक हो वासना प्रकृति का प्रथम और चिरन्तर स्पंदन तो है वह जीवन से अविच्छेद होती है। आशा वासना का उल्लास होती है। और उसका विभाव भी वासना के उत्पन्न होते ही हम उसकी तृप्ति की आशा करते हैं। यही वासना का उल्लास है और वासना के तृप्त होने की आशा जब हमें होती है, तब हमारी दबी हुई वासना भी भावुक उठती है। अतएव आशा और वासना में अन्योन्याश्रय संबंध है। सुषमा के भव्य समारोह में तप संयमी मन को अपने हृदय की रिक्तता का बोध हो चला है। एकाकी जीवन रिक्त नहीं तो और क्या होता है ? उनकी वासना-प्राकृतिक भूख अपनी संतृप्ति चाहती थी। वह चाहती थी कि उसे ऐसा कोई साथी मिले जो जीवन की उस शून्यता को दूर कर दे। तप बलिष्ठ और वासनेदीप्त मन का युवक शरीर हवा के मंद स्पर्श से शिथिल हो उठा। साथी पाने की आशा में मनु अधीर हो उठे –

“कल तक और अकेले कह दो / हे मेरे जीवन बोलो किसे सुनाऊ कथा कहो मत / अपनी निधि न अर्थ खोलो।”

मन की इस मनःस्थिति का बोध कराकर वास्तव में आशा सर्ग समाप्त हो जाता है।

३) श्रद्धा :

I) जल – प्लावन के कारण श्रद्धा भी एकाकी और निरूपाय स्थिति में पड़ गई है वह अपने बंधु-बांधवों से सदा के लिए विच्छिन्न हो गई थी। मन के समान उसके भी पूर्वजीवन का सहसा पराक्षेप हो गया। उसका उसे दुख कम नहीं था। किंतु जिस विषम परिस्थिति ने मनु को हिलाकर मोहमुग्ध जर्जर अवसाद की मूर्ति बना दिया था, उसी में रहकर श्रद्धा के मुख और उस पर वह मुस्कान दोनों उल्लास, स्फूर्ति तथा चेतना से सम्पूरित थे। इसका रहस्य है कि वह जीवन की प्रत्येक स्थिति से तादात्म्य स्थापित करने की शक्ति से फरित थी। जल – प्लावन ने उसे जिस दयनीय स्थिति में डाल दिया था उसके कारण उसे पर्याप्त वेदना तो थी, परंतु उस वेदना ने उसे जड़ता नहीं प्रदान की। वेदना के कारण उसकी चेतना की गति अवरुद्ध नहीं हुई।

II) श्रद्धा का समर्पण :

श्रद्धा का मन को समर्पण नर के प्रति नारी का सहज आकर्षण मूलक खिंचाव ही नहीं था, उसके मूल में मानवता की और विश्व की सेवा भावना भी थी।

“समर्पण लो सेवा का भार / साजल संस्कृति का यह पत्तवार।
आज से यह जीवन उत्सर्ग / इसी पद तल में विगत विकार।”

मन में निराशा और जड़ता जम चुकी थी। वे जीवन मार्ग के थके प्राणी थे। उन्हें अवलंब की आवश्यकता थी। श्रद्धा में परिस्थिति के अनुकूल अपने को ढालकर अपने निष्ठामार्ग में अग्रसर होने की क्षमता थी। इसलिए कर्म की प्रेरणा और सहयोग का प्रस्ताव श्रद्धा की ओर से ही हो सकता था। मनु श्रद्धा जिस स्थिति में है उनकी प्रकृतियों में जो विशिष्टतायें या अंतर है उन्हें देखते हुए श्रद्धा का मनु को समर्पण करना मनोवैज्ञानिक सत्य ठहरता है।

४) काम :

I) मन तप निस्त थे। श्रद्धा ने उन्हें बताया कि केवल तप जीवन का सत्य नहीं है उसका दूसरा पक्ष आशा उल्लास से पूर्ण कर्म का भोग है।

II) बाह्य प्रकृति ने मनु को वासना को उदीप्त कर दिया था। मनु का उद्देलित यौवन मचल उठा, जब यौवन का भार इस स्थिति तक पहुँच जाता है कि व्यक्ति यम, संयम की इंच मात्र भी परवाह नहीं करता है तब उसकी चेतना कुछ शिथिल पड़ जाती है। उसे नीचे से उठकर जड़ता का तम (विषयान्धकार) अपने अंक में समेट लेता है।

III) काम की वाणी :

स्वप्न अचेतन मन का आरोपण होता है, चूंकि मनु में काम की चित्तपरिति स्फुरणा हो चली थी। इसलिए उन्हें स्वप्न में काम की यह वाणी सुनाई पड़ती है - “मैं अब भी प्यासा हूँ, देव जीवन में विलास की जो बाढ़ सी आयी थी उससे भी मैं तृप्त न हो सका। देव जाति मेरी ही उपासना में लीन थी और उसी दशा में विनष्ट हो गयी।”

IV) श्रद्धा की और प्रवर्तन :

मनुष्य का जीवन जड़ चेतन के प्रगाढ़ अलिंगन में बद्ध होता है। अतएव वह अपनी जड़ता से भूले करता है और चेतना के कारण उनका सुधार करने में प्रवृत्त होता है इसी भूल सुधार में उसका जीवन उलझता चलता है। मनुष्य अपनी जड़ चेतना का इसी गाँठ को उलझाने को सुलझाने का प्रयत्न करता है, पर यह कार्य सबके वश का नहीं होता है, न यह उलझन दूर हो पाती है, न जीवन में संगति स्थापित हो पाती है और परिणाम स्वरूप उसका पूर्ण विकास भी नहीं हो पाता है। जड़ता और चेतनता की संगति स्थापित करना आत्मविश्वास की प्रथम अनिवार्यता होती है। काम भी मनु से यही कहता है कि जड़-चेतना की समस्या को सुलझाने वाला वही श्रद्धा है। श्रद्धा इस समस्या को किस प्रकार सुलझायेगी? श्रद्धा अपनी प्राकृतिक विशेषतानुसार प्रत्येक जीवनस्थिति से तादात्म्य स्थापित करके उसके भीतर से कर्तव्य कर्म का निर्धारण और उल्लास के साथ विश्वास आशा के साथ उसका पालन करती है यही उसकी प्रकृतिगत विशेषता थी।

काम मनु से कहता है कि श्रद्धा को पाना है तो उसके योग्य बनो तात्पर्य यह है कि जो जड़ चेतन की समस्या को सुलझाना जानती है, उसे पाने के लिए उसके मार्ग पर चलना सीखो। यहाँ पर यह भी ध्यातव्य है कि काम का यह तात्पर्य नहीं है कि नर को नारी के मार्गदर्शन में चलने से श्रेय की प्राप्ति होती है, उसकी समस्या दूर हो जाती है।

५) वासना :

I) मनु और श्रद्धा को साथ-साथ रहते कुछ समय बीत चला। इस अवधि में यद्यपि दोनों एक-दूसरे की और आकृष्ट हो चुके थे, दोनों में पूर्ण समर्पण का भाव था। फिर भी नर-नारी के पूर्ण मिलन में एक अटकाव था। मनु में वासना का उभार पहले ही हो चुका था। श्रद्धा के अपूर्व रूप, साहचर्य, समर्पण उसकी काम प्रेरणा और काम के स्वप्न संदेश के कारण उनकी इस वासना में इति-भूख जाग उठी। इति इच्छा अपने अवलंबन पर एकाधिकार चाहती है। प्रणयी अपने प्रिय पात्र की निरावरोध निकटता की आकांक्षा से व्याकुल रहता है उसे तनिक भी व्यवधान तिलमिला देता है। पुर्णयियों का कहना है कि ऐसी स्थिति में 'हार पहार से लागत है' तथा गोपियाँ कृष्ण की मुरली भी सहने में असमर्थ थी। तात्पर्य यह है कि इति-भूख ईर्ष्या लेकर जाग्रत होता है मन भी ईर्ष्या से अभिभूत हो उठे। पशुओं के प्रति प्रदर्शित श्रद्धा का स्नेह भी मनु को पीड़ा देने लगा।

चिंता सर्ग में बताया गया है कि देव-जाति एकाधिकार भोग-भावना से अभिभूत थी। वह निज को भोग्या और विश्व को भोग्य मान बैठी थी। मनु का जल-प्लावन से पूर्व का जीवन इसी मान्यता की छाया में स्फुरित रहा। यही उनका संस्कार था यह भोग्यवादी विकृत अहं की पराकाष्ठा है।

II) मनु की ईर्ष्या का यह असाधारण उभार आवेश जन्य और क्षणिक था। श्रद्धा के पास आते ही वह दब गया और मनु प्रणय की स्निग्धता में वह चले। नारी श्रद्धा को इति-भूखी आँखों से देखकर नर मनु मुग्ध हो गया।

६) लज्जा :

I) मनु के चेतना समर्पण ने श्रद्धा की नारी के मूल मधु अनुभाव (लज्जा) प्रस्फुटित कर दिया। मधु भाव इति है उसका मूल मधु अनुभाव लज्जा है। श्रद्धा की अन्तर्चेतना समर्पण विमुग्ध होकर अपनी लज्जा में सिमट उठी। कवि ने भोग इति और लज्जा के सहज द्वंद्व को इस सर्ग में व्यक्त किया है। नारी जिस क्षण अपना निःशेष समर्पण करने के बिंदु पर खड़ी होती है, उस समय उसकी पकृत लज्जा उसे रोकती है इसीलिये इस पावन कर्म के पूर्व नारी अपने कर्तव्य को ठीक से समझ ले। नर-नारी का यह मिलन पावन इसलिये माना जाता है कि इसी पर सृष्टि का मूल और विकास होता है। इति सुख से चलकर प्रेम परिणय में बंधकर कर्तव्य को संपन्न करता हुआ अपनी पूर्णता उपलब्ध कर लेता है। श्रद्धा काम मार्ग के प्रथम प्रस्थान बिंदु पर खड़ी है काम मनु और श्रद्धा को एक करना चाहता है। इसी स्थिति में श्रद्धा को लज्जा की अनुभूति होता है। श्रद्धा के व्यक्तित्व के दो पक्ष नारी (Sex) और लज्जा है।

II) भोग और कर्म का संघर्ष :

श्रद्धा की नारी आँखे बंद करके मनु को आत्मसमर्पण करना चाहती है। वह लज्जा की पकड़ से तिलमिला उठती है। लज्जा उसे अंध-समर्पण करने से रोक रही है। नारी उससे पूछती है – तुम कौन हो? क्या तुम मेरे हृदय की परवशता हो? तुम मेरी स्वतंत्रता छीन रही हो। लज्जा कहती है – बाल! आश्चर्य करने की आवश्यकता नहीं। तुम्हें अपने हित का विचार करना चाहिये। मैं तुम्हें यही अवसर प्रदान करती हूँ। मैं एक ऐसा अवरोध हूँ जो तुम्हें सोचने समझने को बाध्य करती हूँ।

काम सर्ग में यह स्पष्ट हो चुका है कि मन के अन्तर्मन की चिंतना ही स्वप्न में काम – वाणी के रूप में सुनाई पड़ती है। उसी प्रकार इस सर्ग में श्रद्धा की अन्तर्चेतना को तर्क-वितर्क, इच्छा, आस्था, सोच-विचार, नारी और लज्जा के संवादों द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

लज्जा में उत्कृष्ट जीवन मूल्य की स्वीकृति है जिसे जीवन के आदर्श का बोध न होगा, जिसे जीवन मूल्यों के प्रति आस्था न होगी, वह लज्जा भी अनुभव न करेगा। लज्जा एक सामाजिक भाव है और व्यक्ति में तब तक इसका सम्यक् उद्भव नहीं होता जब तक उसमें सामाजिक चेतना जागृत नहीं होती यह सामाजिक चेतना व्यक्तिगत चेतना का परिष्कार करती है और व्यक्ति को प्रगति प्रदान करती है। इसलिये लज्जा के कथन का तात्पर्य यही है कि श्रद्धा की नारी को व्यक्तिगत सुख के लिए नर को आत्मसमर्पण न करके अपने उस विश्वास के प्रति सक्रिय आस्था रखनी चाहिये जिसे स्वीकार करके उसने नर का साथ पकड़ा है।

७) कर्म :

I) इसके आरंभ में हम मनु को कर्म में प्रवृत्त देखते हैं। यज्ञ-यज्ञ की पुकार से उनका हृदय भर उठा है। यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि मन परार्थ भावना से नहीं निजोपभोग के निमित्त ही यज्ञकर्म की ओर झुके थे अतएव उनके इस कर्म का आधार उनका व्यक्तिगत भोग था। उनका अपूर्व अहं था वे श्रद्धा को पाने के लिए यज्ञ-कर्म कर रहे थे।

II) मनु ने हिंसातिरेक को प्रलय का कारण माना था। जो व्यक्ति अपनी स्वार्थ सिद्धी के निमित्त किसी निर्दोष प्राणी की बलि दे सकता है। उसकी भोगेच्छा के अन्य सभी विकृत रूप

निश्चित रूप से उभरेंगे। विकृत काम से क्रोध, क्रोध से संमूढता, संमूढता से बुद्धिविनाश, बुद्धिविनाश से व्यक्ति के विनष्ट होने की बात निश्चित है।

III) श्रद्धा को यह पशुबलि कार्य असह्य वेदना दे गया। जिस व्यक्ति को आत्मसमर्पण करने के लिए वह इतनी अधीर थी उसके इस व्यक्तव्य ने उसे इतना दुख दिया। लज्जा सर्ग में हम देख चुके हैं कि प्रसाद कल्पना की आदर्श नारी एक बार जिसे वरण कर लेती है, उससे कभी भी घृणा नहीं करती, परंतु साथ ही वह अपने कर्तव्य विश्वास के मार्ग से विचलित भी नहीं होती। वह अपने प्रिय पति को भी उसी श्रेय मार्ग पर ले आने का प्रयत्न करती है। यही उसकी साधना होती है। श्रद्धा की इस समय यही स्थिति है। वह मनु के प्रति व्यक्तिगत प्रेम-भाव रखकर भी उनके कारण अपने जीवन-विश्वास, कर्तव्यनिष्ठा को छोड़ने के लिए उदत्त नहीं थी।

IV) मनु का भोगी रूप :

मनु का कहना है कि दो दिन इस जीवन का वही चरम सुख है, जहाँ इंद्रियों की निरंतर तृप्ति होती रहे, जहाँ हृदय की आकांक्षाओं की सर्वदा संतुष्ट होती रहे। एक भोगी द्वारा भोगप्रधान जीवन की महत्ता का प्रतिपादन और अधिक आकर्षण क्या हो सकता है? मनु का काम विकृत हो उठा है, इसीलिए उन्होंने भोग-इंद्रिय सुख को जीवन का चरम लक्ष्य मान लिया है।

V) छल – व्यापार :

कोई लाख उपदेश दिया करे, किंतु विकृत काम का उपचार सुगम कार्य नहीं होता। कामी व्यक्ति अपनी आवश्यकता की पूर्ति में झुक भी जाता है। मनु ने भी यही किया, उन्होंने श्रद्धा को विश्वास दिलाया कि वे वही करेंगे जैसा श्रद्धा कह रही है। श्रद्धा ने मनु की इस छल-वाणी को सत्य मान लिया। उसका प्रणयी अब उसकी दृष्टि में अपनी 'कुटिलता' छोड़ने का सच्चा संकल्प करता हुआ प्रतीत होने लगा। फिर वह प्रिय के आग्रह को अस्वीकार कैसे कर सकती थी? फलस्वरूप उसका खिंचाव ढीला पड़ गया। मनु की मुराद पूरी होने को आयी। सृष्टि शक्ति नवसृजन के लिए मनु – नर और श्रद्धा – नारी के जिस मिलन की योजना करने लगी थी वह सफल हुई।

८) ईर्ष्या :

मनु की काम भावना विकृत होकर एकाधिकार भोग को ही जीवन का चरमलक्ष्य मान चुकी थी। श्रद्धा के स्वच्छ हृदय को उन्होंने अपनी भोग तृप्ति के निमित्त छलवाणी द्वारा प्रवंचित करने में जरा सी भी हिचक न रखी। नवागतुक के आगमन का समाचार मनु को सह्य न हो सका। कहाँ तो मनु का आकांक्षा थी कि श्रद्धा केवल उन्हीं का ध्यान रखे और कहाँ श्रद्धा ने उन्हें बनाया कि नवागतुक के कारण अब उनकी अनुपस्थिति अधिक नहीं खलेगी। मनु का विकृत काम और भी भयानक हो उठा। उन्होंने खींचकर श्रद्धा से कहा:

“तुम फूल उठोगी लतिका सी / कंपित कर सुख सौरभ तरंग।
मैं सुरभि खोजता भटकूँगा / वन – वन बन कस्तूरी कुरंग।।”

९) इड़ा :

I) मनु ने श्रद्धा को छोड़ने के उपरांत पर्याप्त काल तक एकांत भोग – तृप्ति के लिए विविध प्रयत्न किये होंगे पर उन्हें कहीं भी तृप्ति नहीं मिली। जब कोई व्यक्ति अपने हितैषी की सदप्रेरणाओं – परामर्शों को न मानकर तथा उसका साथ छोड़कर मन चाहे कार्य में प्रवृत्त होता है तो असफलता मिलने पर वह अपनी गलती का अनुभव तो करता ही है साथ ही अपने स्नेही जन की बातों का पश्चाताप पूर्णचिंतन करता है। इसी समय मनु के अन्तःचेतन पर काम की छाया पुनः उभरती है। ‘मनु तुम श्रद्धा को भूल गए’ तुम अपने पुरुषत्व के मोह में श्रद्धा के महत्त्व को भूल गए। नारी के महत्त्व की उपेक्षा करने के कारण राम ने भी इसी प्रकार बालि को फटकारा था –

“मूढ तौहि अतिशय अभिमाना / नारि सिरवावन करे सिन काना।”

मनु का जीवन भी श्रद्धा के गार्हस्थ जीवन से पलायन करने के कारण शापित हो उठा।

II) सारस्वत नगर के पूर्णतया विकसित होने पर मनु इड़ा से पूछते हैं - “अभी कुछ करने को है शेष यहाँ।” क्या अब साधन स्ववश हो चुके ? इड़ा पूछती है, मनु अपने प्रश्न के उत्तर में किये गए प्रश्न का आशय कुछ का कुछ समझ गये। प्रश्न का उत्तर प्रश्न में देने पर विभ्रम का होना स्वाभाविक ही होता है। मनु ने कहा नहीं ‘अभी मैं रिक्त रहा, देश बसाया पर उजड़ा है, मानस देश यहाँ’। फिर उन्होंने इड़ा से उस रिक्त मानस रिक्तता को भरने का मधुर आग्रह किया। मनु का भोगी देवत्व हुंकार कर उठा और उसने इड़ा को अपने राग – व्याकुल आलिंगन में कस लिया।

१०) दर्शन :

भोगमूलक संस्कार का नाश :

प्रलय के उपरांत मनु इड़ा की सहायता से पुनः सारस्वत नगर की स्थापना में प्रवृत्त हुए थे, पर वे अपने पुराने भोगमूलक संस्कारों के कारण इस कार्य में असफल रहे। रुद्र के कोप ने पुनः देव संस्कृति को स्थापित न होने दिया और देवत्व पुनः हार गया। इस सर्ग में मन (देव) के स्थान पर मानव को नियोजित किया गया है। देवों के आश्रय से इड़ा जो कार्य न कर सकी, उसे उसने मानव के सहारे करने का व्रत लिया सृष्टि के इस पुनरुन्मेष युग में मानव उस आनंदपूर्ण संस्कृति की स्थापना में लगा।

११) आनंद :

युग के तरुण आर्यसंघ की आनंद, उल्लास और प्रमोद से परिपूर्ण आत्मवादी संस्कृति (जो काम की व्यापक भावना से निमित्त थी) के स्वरूप की स्थापना ही कामायनी काव्य का कार्य है। वह स्थापना इस सर्ग में पूर्ण होती है।

सर्ग के आरंभ में सारस्वत प्रदेश का नेतृत्व करते हुए तरुण मानव की आनंद यात्रा का समारोह अंकित किया गया है। कर्मभूमि में अनुसरण करता हुआ मानव अपने संपूर्ण समाज को लेकर आनंद भूमि पर पहुँचने में समर्थ हुआ है। मानव द्वारा निर्मित समाज – जीवन और उसे अनुप्राणित करने वाली संस्कृति इस दृश्य में बेजोड़ है।



कामायनी का महाकाव्यत्व

भूमिका :

हिंदी साहित्य में महाकाव्य की एक सुदीर्घ परंपरा विद्यमान है और आधुनिक युग में भी अनेक महाकाव्यों की रचना हुई है। आधुनिक युग के इन महाकाव्यों को देखकर कभी-कभी आश्चर्य चकित भी होना पड़ता है क्योंकि साहित्य की इस विधा में जितना परिवर्तन और परिवर्धन हुआ है, उतना अन्य विधाओं में दृष्टिगोचर नहीं होता। इसका सबसे बड़ा कारण इस युग का मौलिक चिंतन है, क्योंकि आधुनिक कवियों ने रुढ़िवादिता और गतानुगतिकता को छोड़कर महाकाव्य के अनंत और उन्मुक्त गगन में विहार किया है। कामायनी आधुनिक युग का महाकाव्य है। उसमें अधिक गुरुता एवं महत्ता का दर्शन होता है।

महाकाव्यत्व :

- I) जीवन की महानतम वास्तविकता को वर्ण्य विषय बनाना चाहिये।
- II) मानव जीवन के चरम लक्ष्य को साध्य रूप में उपस्थित करना चाहिये।
- III) सौंदर्य का चित्रण होना चाहिये।
- IV) जगत एवं जीवन के महान तथा चिरंतन सत्य का महत्त्व समझना चाहिये।
- V) मानवता के स्थायी शिवत्व का दर्शन करना चाहिये।
- VI) विश्वजनीन चेतना के रूप को स्पष्ट करना चाहिये।

महाकाव्य की नवीन मान्यताओं के आधार पर कामायनी के महाकाव्यत्व का परीक्षण करेंगे।

१) कथानक :

कामायनी का कथानक इतिहास-सम्मत है तथा आदि-मानव की जीवन-गाथा से संबंधित होने के कारण श्रेष्ठ भी है। परंतु इतना अवश्य है कि यह कथानक अधिक विस्तृत नहीं है। श्रद्धा और मनु की जीवन – गाथा अत्यंत लघु है, उसमें कथानक का इतना विस्तार नहीं है, जितना कि एक महाकाव्य के लिए होना चाहिए, परंतु प्रसाद ने उस लघु कथानक को भावों के वर्णन तथा आधुनिक मानव जीवन की विषमताओं के चित्रण द्वारा विस्तृत कर दिया है। इसका मूल कारण यह है कि एक तो मनु और श्रद्धा की विस्तृत कथा मिलती नहीं, दूसरे प्रसाद अन्तर्मृखी कवि है, अतः उन्हें कथा कहने में उतना रस नहीं मिलता, जितना भावना-व्यापार के विश्लेषण और जीवन-समस्याओं के सुलझाने में मिलता है। कामायनी में कथा का विस्तार कुछ अलौकिक घटनाओं यथा देव सृष्टि प्रलय, तांडवनृत्य, त्रिपुर वर्णन आदि के द्वारा किया गया है। संक्षेप में यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि कामायनी का कथानक लघु होते हुए भी महाकाव्य के अनुकूल है।

२) नायक :

‘कामायनी’ के कथा-नायक मनु है वे देव-पुरुष है। अतः उच्च कुलोद्भव है। मनु अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते है। पर आदर्शवादी महाकाव्यों के नायकों की भाँति मनु धीरोदात्त नायक नहीं कहे जा सकते। वे धीर ललित नायक माने जा सकते है। मनु के जीवन में दुर्बलता – सबलता, निकृष्टता-उत्कृष्टता आदि का समावेश किया गया है। इसका मूल कारण यह है कि प्रसाद अपने नायक को अति-मानव बनाना नहीं चाहते, वे उसे जन-जीवन के अधिक निकट लाना चाहते है प्रसाद जी ने किस प्रकार एक व्यक्ति अपनी राजसी और तामसी प्रवृत्तियों से ऊपर उठता हुआ सात्विक जीवन व्यतीत करता है यह मनु के माध्यम से अंकित किया है।

‘कामायनी’ नायक प्रधान – काव्य न होकर नायिका प्रधान काव्य है और इस काव्य की नायिका श्रद्धा है। क्योंकि महाकाव्य की कथा की नायिका में जो गुण अपेक्षित होने चाहिए, वे श्रद्धा में विद्यमान है।

३) चरित्र-चित्रण :

प्रसाद जी ने ‘कामायनी’ में रस की ओर ध्यान देते हुए पात्रों के चारित्रिक विकास को दिखाने का प्रयत्न किया है। कामायनी में पात्रों की संख्या अधिक नहीं हैं और थोड़े से पात्रों का ही चरित्र-चित्रण मिलता है। कामायनी में श्रद्धा, मनु और इडा ये पात्र संपूर्ण मानव-जगत की चित्तवृत्तियों एवं स्त्री-पुरुषों का प्रतिनिधित्व करते है। और प्रसाद ने इन अल्प-पात्रों के चरित्र-चित्रण द्वारा ही मानव-मात्र की चारित्रिक विशेषताओं, बारीकियों, उत्थान पतन में सहायक प्रवृत्तियों आदि का सुंदर विवेचन किया है। अतः उनका यह चरित्र-चित्रण भी महाकाव्य के सर्वथा अनुकूल है।

४) प्रकृति – चित्रण :

प्राकृतिक चित्रण की दृष्टि से कामायनी अपने युग की एक सशक्त रचना है। इसका प्रारंभ तथा अंत ही प्रकृति की गोद में हुआ है। प्रकृति-चित्रण की निम्न प्रणालियाँ काव्य में प्रचलित है।

क) आलंबन रूप :

इस में प्रकृति का संश्लिष्ट रूप प्रस्तुत किया जाता है। कामायनी में प्रकृति के भयानक एवं रम्य दोनों ही रूपों का संश्लिष्ट रूप में चित्रण किया गया है। ‘चिंता’ सर्ग का प्रलय वर्णन प्रकृति के भयंकर रूप का उत्कृष्ट उदाहरण है:

हा-हाकार हुआ क्रंदनमय,
कठिन कुलिश होते थे चूर।
हुए दिग्गत वधिर भीषण रव,
बार-बार होता था क्रूर।।

‘कामायनी’ में उषाकाल का चित्रण करते हुए आशा सर्ग के अंतर्गत प्रसाद जी ने लिखा है :

उषा सुनहले तीर बरसती,
जय लक्ष्मी सी उदित हुई।
उधर पराजित काल-रात्रि भी,
जल में अन्तर्निहित हुई।।

इसी प्रकार चाँदनी का सुंदर चित्रण निम्न पंक्तियों में प्रस्तुत किया गया है :

“धवल मनोहर चन्द्र विंब से,
अंकित सुंदर स्वच्छ निशीथ।”

ख) उद्दीपन रूप :

इसके अंतर्गत प्रकृति संयोग एवं वियोग में मानव की भावनाओं को उद्दिप्त करती है। कामायनी में प्रकृति यही कार्य करती है। श्रद्धा एवं मनु के मिलन के अवसर पर मधुर चाँदनी उनके सुख – आनंद का वर्धन करती है, किंतु यही प्रकृति वियोग काल में वियोगी जनों को कष्ट भी देती है।

ग) मानवीकरण :

मानवीकरण में प्रकृति में मानवीय भावनाओं एवं कार्यों का आरोप किया जाता है। कामायनी में अनेक स्थलों पर प्रकृति को मानवी के रूप में देखा गया है। यथा – आशा सर्ग में प्रभात, रजनी का अभिसारिका रूप में वर्णन, वासना सर्ग में संध्या का वर्णन इत्यादि। इन सभी चित्रों में प्रकृति विविध क्रिया – कलाप करती हुई दिखाई गई है।

घ) रहस्यात्मक रूप :

कामायनी में अनेक स्थलों पर रहस्यमयी सत्ता का आभास देने के लिए प्राकृतिक उपादानों से काम लिया गया है। ‘चिंता’ सर्ग में विश्व देव का, उसकी सत्ता का इसी प्रकार का वर्णन है।

ड) संवेदनात्मक रूप :

प्रकृति मानव के साथ उसके हर्ष तथा दुःख में सम्मिलित होकर अपनी संवेदना प्रकट करती है। कामायनी में अनेक स्थलों पर प्रकृति इस रूप में चित्रित की गई है। स्वप्न सर्ग में श्रद्धा के विरह में प्रकृति भी शोक-मग्न हो जाती है। इसी प्रकार आनंद सर्ग में मनु-श्रद्धा के आनंद में प्रकृति भी आनंद एवं उल्लास में मग्न हो जाती है।

च) वातावरण – निर्माण के रूप में :

गंभीर अथवा हल्के वातावरण के लिए प्रसाद ने प्रकृति का आश्रय लिया है। शोकपूर्ण वातावरण के निर्माण के लिए गंभीर प्रकृति का हल्का-फुल्का रूप प्रस्तुत किया गया है।

कामायनी में दोनों ही रूप मिलते हैं, यथा-चिंता सर्ग में गंभीर वातावरण का निर्माण करने के लिए दूर-दूर फैली, हुई हिम तथा स्तब्धता का वर्णन है। इसी प्रकार प्रसन्नता का वातावरण निर्माण करने के लिए आशा सर्ग में उषा का प्रसन्न चित्त वर्णन किया गया है।

छ) अलंकार :

कामायनी में प्रकृति के उपमानों द्वारा अलंकारों की योजना की गई है। श्रद्धा के रूप सौंदर्य को प्रस्तुत करने के लिए इसी पद्धति को ग्रहण किया गया है। इस पद्धति के अंतर्गत गुण एवं आकृति का साम्य दिखाया जाता है।

ज) प्रतीक रूप में :

प्रकृति के उपादान मानव की भावनाओं के प्रतीक रूप में प्रयुक्त किए जाते हैं। कामायनी में इसका काफी प्रयोग मिलता है, यथा-उषा सुख का, मुकुल प्रिय का, मधुप प्रियतम का, अंधकार विषाद का प्रतीक माना गया है।

झ) उपदेशिका रूप :

प्रकृति के रहस्यों द्वारा पाठक को शिक्षा देने का कार्य इस पद्धति के अन्तर्गत किया जाता है। कामायनी में भी कहीं-कहीं यह पद्धति अपनाई गई है, यथा-चिंता सर्ग के अंतर्गत कवि का यह उपदेश देना कि विद्युत प्रकाश की भाँति ही मानव जीवन भी क्षणिक होता है।

ञ) दूती रूप में :

कामायनी में प्रकृति को स्पष्ट रूप से दूती रूप में चित्रित नहीं किया गया है। इसका हल्का सा आभास आशा सर्ग में रजनी को दूती के रूप में चित्रित करने के प्रयास में मिलता है।

समग्रतः कामायनी में प्रकृति को उसके विविध रूपों में अपनाकर प्रसाद ने आधुनिक काव्यों में विशिष्ट स्थान बनाया है।

५) युग-चित्रण :

प्रत्येक महाकाव्य अपने युग की प्रतिनिधी रचना कहलाता है। कामायनी आधुनिक युग का प्रतिनिधि महाकाव्य होने के कारण अपने युग की सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों का सही चित्र उपस्थित करती है। प्रसाद जी ने आधुनिक मानवीय जीवन की अनेकानेक गंभीर समस्याओं एवं प्रश्नों को प्रस्तुत किया है। पश्चिम की भौतिकता विलास का प्रचार एवं प्रसार कर रही है। इसका भारतीय सभ्यता पर भी यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। देवताओं के अबाध विलास के द्वारा उनका नाश दिखाकर कवि ने भौतिकवाद के अतिशय दुष्परिणाम को चित्रित किया है।

आधुनिक युग नारी – स्वातंत्र्य तथा नारी महत्त्व प्रस्थापन का युग है। 'कामायनी' में नारी का त्याग, ममता, सेवा, दया तथा सभी आदर्श गुणों से समन्वित रूप में चित्रित किया गया है। श्रद्धा के हृदय में जो भाव रूपी रत्न विद्यमान है वे वस्तुतः नारी हृदय की वास्तविकता की झांकी प्रस्तुत करते हैं:

“दया माया ममता लो आज,
मधुरिमा लो अगाध विश्वास।
हमारा हृदय रत्ननिधि स्वच्छ,
तुम्हारे लिए खुला है पास।।”

‘कामायनी’ में सारस्वत नगर के उत्कर्ष एवं उसके अपकर्ष द्वारा प्रसाद जी ने यही दिखलाया है कि यंत्रों के अविष्कार द्वारा आज जो प्रकृति से संघर्ष करते हुए सभ्यता की चरम सीमा पर पहुँचने का प्रयत्न हो रहा है। यह सब व्यर्थ है।

प्रसाद जी पर गांधीवाद का भी प्रभाव लक्षित होता है। प्रसाद जी ने तात्कालिक युग में व्याप्त गांधीवाद के सिद्धांतों सत्य, अहिंसा, सेवा, सर्वोदय, ग्राम सुधार आदि का समावेश भी कामायनी में किया है। श्रद्धा पशुयज्ञ का विरोध करती हुई अहिंसा का समर्थन करती हैं :

“और किसी की फिर बलि होगी,
किसी देव के नाचे।
कितना धोखा उससे तो हम,
अपना ही सुख पाते।।”

इस विवेचन से स्पष्ट है कि प्रसाद जी ने कामायनी में युग-चित्रण को भी पर्याप्त महत्त्व दिया है।

६) भाव एवं रस :

कामायनी में भावों का अत्यंत सजीव वर्णन मिलता है। कहीं – कहीं कवि वर्णन में इतने लीन हो गये हैं कि वह कथा की उपेक्षा कर बैठे हैं और भाव वर्णन में ही पूरा सर्ग लिख गये हैं। लज्जा मनोभाव के कारण वृत्तियों में जो संकोच उत्पन्न होता है, उसका वर्णन निम्न पंक्तियों में किया जा सकता है :

“छूने में हिचक देखने में,
पलकें आँखों पर झुकती हैं।
कलख परिहास भरी गूँजे
अधरों तक सहसा रुकती है।।”

कामायनी में प्रमुख रूप से शृंगार और शांत रस की प्रधानता रही है, पर गौण रूप से अन्य रसों की स्थिति भी कामायनी में है। शृंगार के दोनों ही पक्षों – संयोग और वियोग का निरूपण कामायनी में किया गया है। मनु और श्रद्धा के प्रथम मिलन पर श्रद्धा के सौंदर्य को देखकर मनु आश्चर्यचकित हो गए। उस सम्मोहक सौंदर्य का सुंदर चित्रण निम्न पंक्तियों में है :

“और देखा वह सुंदर दृश्य,
नयन का इन्द्रजाल अभिराम।
कुसुम वैभव में लता समान,
चंद्रिका से लिपटा घनश्याम।।”

विप्रलंभ श्रृंगार के वर्णन में भी कवि को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। मनु के चले जाने पर श्रद्धा के वियोग का सुंदर चित्रण कवि ने किया है :

“श्रद्धा अपनी शयन गुहा में,
दुःखी लौटकर आई।
एक विरक्त बोझ सी ढोती,
मन ही मन दिखलाई।।”

शांत रस भी कामायनी का प्रमुख रस है। ‘चिंता’, ‘दर्शन’, ‘रहस्य’ और ‘आनंद’ सर्ग में इस रस का परिपाक हुआ है :

“ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक-दूसरे से न मिल सकें,
यह विडंबना है जीवन की।।”

७) महत् उद्देश्य :

कामायनी का उद्देश्य अत्यंत स्पष्ट है। और वह है आनंदवाद की प्राप्ति। कामायनी में मनु और श्रद्धा के माध्यम से मन के मनोमय कोष से आनंदमय कोष तक पहुँचने की यह कथा अत्यंत भावमय और श्लाघ्य है। प्रसाद जी ने शैवागमों के प्रति प्रत्याभिज्ञादर्शन को कामायनी में मात्र सैद्धांतिक रूप में प्रस्तुत नहीं किया है। वरन् घटनाओं तथा क्रिया-कलापों के द्वारा इसे सहज मानवीय धरातल पर प्रस्तुत किया है। रूपक के धरातल पर भी इसका महत् उद्देश्य सुस्पष्ट है। अंत में चलकर कवि ने इच्छा, क्रिया और ज्ञान का समन्वय किया है। अखंड आनंद की प्राप्ति ही कामायनी का महान उद्देश्य है।

८) उदात्त शैली :

महाकाव्य की शैली में नाना वर्णन प्रवाहमयता आदि का होना आवश्यक है। भाषा शैली की दृष्टि से कामायनी छायावादी युग की श्रेष्ठ काव्य – कृति है।

९) भाषा :

कामायनी की भाषा विशुद्ध खड़ी बोली है जो कहीं भी सामान्य स्तर की नहीं है। भाषा साहित्यिक और अत्यंत समृद्ध है। शब्दों का चुनाव भाषानुरूप किया गया है। चित्रमयता, नाद-सौंदर्य इन शब्दों का निजी विशेषता है। शब्दों का चुनाव, तत्सम्, तद्भव तथा देशज – तीनों ही स्रोतों से किया गया है। शैवागमों से प्रभावित होने के कारण शैवदर्शन के परिभाषिक शब्द भी मिलते हैं। प्रत्याभिज्ञा दर्शन से संबंधित अनेक शब्द कामायनी में बिखरे हुए मिलते हैं –

“कर रही लीलामय आनंद
महाचिति सजग हुई सी व्यक्त,
विश्व का उन्मीलन अभिराम
इसी में सब होते अनुरक्त।।”

२) छंद :

कामायनी में प्रसाद जी ने शास्त्रीय छंदों के साथ ही कुछ नए छंदों का निर्माण भी किया है। कामायनी में लगभग १२ छंद प्रयुक्त किए गए हैं। इनमें ताटंक, वीर, छंद, पद्धरि, पादाकुलक श्रृंगार इत्यादी हैं।

३) अलंकार :

अलंकारों के प्रयोग प्रसाद जी ने प्राचीन अलंकारों के साथ ही नवीन अलंकारों का भी कामायनी में प्रयोग किया है। यथा उपमा, उत्प्रेक्षा रूपकातिशयोक्ति के साथ – २ विशेषण – विपर्यय तथा ध्वन्यर्थ व्यंजना भी नवीन अलंकार भी हैं।

अतः कामायनी को रचना - शैली की दृष्टि से भी अभी तक सर्वोत्कृष्ट माना जाता है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कामायनी आधुनिक युग का प्रतिनिधि महाकाव्य है। इस महाकाव्य में विस्तार का अभाव होने पर भी मानवता के समग्र रूप का चित्रण उत्कृष्ट एवं भव्य शैली में किया गया है। अतः यह कहना समीचीन होगा कि कामायनी में महाकाव्य के सभी गुण विद्यमान हैं।



कामायनी की प्रतीकात्मकता

भूमिका :

कामायनी प्रसाद जी का ऐतिहासिक काव्य है, परंतु उसकी घटनाएँ एवं पात्र प्राचीनता के साथ-साथ सांकेतिक अर्थ की अभिव्यक्ति भी करते हैं। प्रसाद जी ने कामायनी के आमुख में इस तथ्य को स्वीकार करते हुए लिखा है कि “यदि श्रद्धा और मनु अर्थात् मनन के सहयोग से मानवता का विकास रूपक है, तो भी बड़ा ही भावमय और श्लाहय है। यह मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास बनने में समर्थ हो सकता है।” कामायनी का रूपक तत्व घटनाओं, पात्रों एवं स्थान से स्पष्ट किया जा सकता है। यहाँ क्रमशः इन सभी पर विचार किया गया है-

१) घटनाओं की प्रतीकात्मकता :

कामायनी की घटनाएँ भी प्रतीकात्मक अर्थ की व्यंजना करती है। कामायनी का निर्माण करने के लिए प्रसाद जी ने देव-सृष्टि के विध्वंस तथा जल-प्लावन की घटना से काव्य का प्रारंभ किया है। जल-प्लावन इस काव्य की अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटना है। जल-प्लावन का कारण मनु के दृष्टिकोण में देवों की अबाध इन्द्रिय वासना का दुष्परिणाम था। प्रतीकात्मक अर्थ में जल-प्लावन घटना का अर्थ यह लगता है कि जब मन निर्बाध इन्द्रिय उपासना में लग जाता है।

चिंता-कातर मनु को श्रद्धा मिलती है, उसके जीवन में एक नूतनता का संचार होता है। वह जीवन में कर्म करने के लिए प्रवृत्त होता है। प्रतीकात्मक रूप से इसका यह अर्थ है कि मन को हृदय का सहयोग मिलता है, तब वह कर्मशील हो जाता है।

जल-प्लावन की घटना के पश्चात पशु-यज्ञ है। पशु यज्ञ में मन असुर पुरोहित आकुलि और किलात के प्रभाव में आकर श्रद्धा-पालित पशु की यज्ञ में बलि दे देते हैं। पशु की कातरता, करुणा तथा चीत्कार आदि से वातावरण में बोझिलता आ जाती है। यहाँ मन की हिंसात्मक वृत्तियों को रूपक के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। पशु यज्ञ पाप का प्रतीक है।

सारस्वत नगर प्राणमय कोश का प्रतीक है तथा सारस्वत नगर निवासी मनु के सहयोगी होते हुए भी तनिक से मनु के अतिचार पर क्रांति मचा देते हैं। अतः वे मन की सहभामिनी अन्य इन्द्रियां के प्रतीक है।

त्रिपुर दाह कामायनी की अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटना है। त्रिपुर इच्छा, कर्म तथा ज्ञान का प्रतीक है। सोमलता से आवृत्त वृषभ स्पष्ट ही भोगों से युक्त धर्म का प्रतीक है, जिसका उत्सर्ग करके मानव अखंड आनंद को प्राप्त करता है। सरोवर समरसता का प्रतीक है, क्योंकि यहाँ पहुँचते ही मन की प्यास मिट जाती है, और सभी को सुख मिलता है। कैलाश शिखर आनंदमय कोश का प्रतीक है, क्योंकि इसी स्थान पर पहुँच कर 'कामायनी' के समस्त पात्रों को अखंड आनंद की प्राप्त होती है।

कामायनी में इन प्रतीकों का निर्वाह यथासंभव किया गया है। प्रसाद जी ने कामायनी के अमुख में इस बात की संभावना व्यक्त कर दी है कि कामायनी के पात्र सांकेतिक अर्थ की अभिव्यक्ति कर सकते हैं : “यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अदभूत मिश्रण हो गया है। इस कारण मन, श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।”

२) पात्रों की प्रतीकात्मकता :

कथा में सांकेतिकता होने के साथ-साथ इसके अधिकांश पात्र सांकेतिक है। मनु तो स्पष्ट ही मननशील, संकल्प-विकल्प युक्त एवं अहंभाव में लीन रहने के कारण अहं भावयुक्त मन के प्रतीक है। श्रद्धा हार्दिक विश्वास एवं आस्तित्वय भाव से परिपूर्ण होने के कारण हृदय की प्रतीक है। इसे आचार्य शुक्ल ने विश्वासमयी रागात्मिका वृत्ति कहा है; परंतु विश्वास एवं राग-वृत्ति का संबंध भी हृदय से होने के कारण वह हृदय की ही प्रतीक सिद्ध होती है। 'इड़ा' को प्रसाद जी ने मस्तिष्क या बुद्धि का प्रतीक बतलाया है वस्तुतः प्रसाद जी ने 'इड़ा' को 'तर्कशीला' बुद्ध माना है जो अति बौद्धिकता का जन्म देने वाली है।

इसके अतिरिक्त गौण पात्रों एवं घटनाओं में से मनु-पुत्र कुमार नव मानव का प्रतीक है, क्योंकि वही मानवता का यथार्थ रूप में प्रचार करता है। किलात और आकुलि अपनी तामसी प्रवृत्तियों की प्रबलता के कारण आसुरी प्रवृत्तियों के प्रतीक है। श्रद्धा का पशु निरोध और शोषित प्राणी के रूप में चित्रण किया गया है। वह 'सहज जीव' या आधुनिक अर्थों में गांधीवादी अहिंसाका प्रतीक है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी कामायनी में रूपकत्व को स्वीकार करते हुए लिखा है- 'रूपक की भावना के अनुसार श्रद्धा विश्वास समन्वित रागात्मिका वृत्ति है और इड़ा व्यावसायात्मिकता बुद्धि। कवि ने श्रद्धा को मृदुता प्रेम और करुणा का प्रवर्तन करने वाली और सच्चे आनंद तक पहुँचाने वाली चित्रित किया है।’

३) पदार्थों की प्रतीकात्मकता :

कामायनी में सोमलता तथा सोमरस का वर्णन आया है। सोमलता का सांकेतिक अर्थ 'भोग' किया गया है। कामायनी में भी मनु को सोमलता का पान करने के पश्चात् भोगोन्मुख दिखाया गया है-

सोम पात्र भी भरा, धरा था
पुरोडाश भी आगे,
श्रद्धा वहाँ न थी मनु के तब
सुप्त भाव जब जागे।

४) स्थानों में प्रतीकात्मकता :

कामायनी में चार स्थानों का उल्लेख हुआ है-

अ) हिमगिरि :

कामायनी काव्य का प्रारंभ और अंत-दोनों ही हिमगिरि से हुए हैं। प्रसाद ने इसे जड़-गौरव का प्रतीक माना है। सामान्य रूप से हिमगिरी जीवन की समग्रता, उज्ज्वलता, पवित्रता तथा समरसता का प्रतीक माना जा सकता है।

आ) सारस्वत प्रदेश :

सारस्वत प्रदेश मनु अथवा मन से संबंधित है, अतः प्रतीक रूप में इसे प्राणमय कोश माना जा सकता है।

इ) मानसरोवर :

शतपथ ब्राह्मण में इसे 'मनोरव सर्पण' कहा गया है। यह स्थान कैलास पर्वत पर स्थित है और सांसारिक माया से ग्रस्त मानव को शांति प्रदान करता है। अतः प्रतीकात्मक दृष्टि से समरसता का प्रतीक माना जा सकता है।

ई) कैलास पर्वत :

यह आनंद कोश का प्रतीक है। इसी स्थान पर आकर मन को समरसता जन्य आनंद की अनुभूति होती है।

अतः निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि प्रसाद का दृष्टिकोण प्राचीन आख्यान के सहारे आधुनिक मानव को संदेश देना था। इसके लिए उन्होंने रूपक काव्य का सहारा लिया है। कामायनी इसीलिए रूपक काव्य माना जाता है।

प्रतीकात्मकता का स्वरूप

प्रसाद जी ने कामायनी की कथा को ऐतिहासिक भूमि पर प्रतिष्ठित किया है; किन्तु घटनाओं की प्राचीनता तथा अतिरंजना के कारण ऐतिहासिकता के साथ उसमें रूपक का समावेश भी दिखाई पड़ता है प्रमुख पात्र ऐतिहासिक ही नहीं वरन् मानव प्रकृतियों के प्रतीक रूप में दिखाये गए हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि प्रसाद जी ने इतिहास के मर्म में मानव वृत्तियों के विकास को भी देखने की चेष्टा की है। इसीकारण कामायनी की कथा को ऐतिहासिक मानते हुए

भी उन्होंने उसको उसी रूप में ग्रहण किया तथा तत्सम्बन्धि उन्ही चरित्रों को लिया जिसने रूपक के रूप में मनोवैज्ञानिक व्यंजना भी हो सके, यदि यह बात उन्हें अभिप्रत न होती हो तो वे कामायनी का सांकेतिक अर्थ लेने में आपत्ति करते, परंतु उन्होने ग्रंथ के आमुख में यह स्पष्ट उल्लेख कर दिया है कि, मनु, श्रद्धा और इडा अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए सांकेतिक में यह अर्थ की अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। अब देखें कि प्रसाद जी को प्रमाणित करने में कामायनी कहाँ तक समर्थ है।

१) भारतीय चिंतन की दो धाराएँ - दुःखवादी और आनन्दवादः

भारतीय दार्शनिकों की चिन्ताधारा में वो प्रवाह बहुत ही स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं-एक धारा का उद्घोष है। आनन्द से ही इन समस्त भूतों की उत्पादित है, 'आनन्द' से ही इसकी संस्थिति है और अतंतः से आनन्द से ही वे विलीन भी होते हैं। अभिप्राय यह कि आदि, मध्य एवं अंत सब कुछ आनन्दमय ही है। इस प्रकार जहाँ एक धारा आत्मवादी और आनन्दवादी है वही दूसरी अनात्मवादी और दुःखवादी है। प्रसाद जी की धारण है कि उपनिषदों की इसी आत्मवादी और आनन्दवादी धारा का सक्रिय रूप शैवागमों में उपलब्ध होता है। वहाँ इसके प्रायोगिक और वैचारिक पक्षों का भी पर्याप्त उपवृहण है। कामायनी में प्रसादजीने इसी दृष्टि का अवतरण किया है।

२) आनन्दवाद और नैगमिक दर्शन :

उपनिषदों की आत्मवादी और आनन्दवादीधाराकी जितनी चतुष्पाद प्रतिष्ठा शैवागमों में हुई है, उतनी नैगमिक दर्शनों में उपलब्ध नहीं होती। न्याय एवं वैशेषिक दर्शनों में 'सुख' आत्मा का आदृष्टजन्य एक विशेष गुण है- जो मुक्ति की दशा में अदृष्ट के शांत हो जाने से स्वयं भी शांत, हो जाता है। सांख्य एवं पातंजल दर्शनों में सत्त्व गुण के कार्य रूप में ही सुख की कल्पना है, पुरुष तो केवल चिन्मय माना गया है- अतः 'प्रकृति पुरुषा न्यताख्याति' अथवा समस्तचित्तवृद्धि का निरोध और स्वरूपावस्थिति - जैसी चरम आध्यात्मिक दशाओं में प्राकृत सुख से ऊपर किसी चिदाहवाद की कल्पना नहीं की जा सकती। परब्रह्म स्वरूप आत्मतत्त्व को निर्विशेष माना जाता है। फलतः 'ज्ञानशक्ति के बावजूद क्रियाशक्ति की समरस स्थिति नहीं है। मुक्ति बेला में भी तत्त्वबोध के बाद भी संसार की सदानन्द अनुभूति नहीं होती - संसार की प्रकृति में कोई परिवर्तन नहीं आता। इतना अन्तर अवश्य हो जाता है कि जहाँ बद्ध पुरुष उसे अज्ञान पूर्वक देखता है वहाँ मुक्त पुरुष उसे ज्ञानपूर्वक देखता है और उसकी अलौकिक रूप को समझ लेता है।

३) प्रतीकात्मकता और चित्रात्मकता :

लक्षण-व्यंजना के कारण भाषा में सांकेतिकता और चित्रात्मकता आती है। अतः कामायनी में चित्रात्मक और सांकेतिक शैली की प्रधानता है। चित्रात्मकता में अप्रस्तुत विधान में कल्पना की आधिक आवश्यकता होती है। उसी तरह सांकेतिक के लिए शब्द शक्तियों का सहारा लेना पड़ता है। कामायनी में दूरारूढ कल्पनाएँ बहुत कम हैं। उसमें फल स्वरूप उसकी भाषा अत्यंत चित्रात्मक और रमणीय बन सकी है। सांकेतिकता के भीतर प्रतीक योजना, लाक्षणिकता, व्यंजकता और ध्वनि सबका समाहार हो जाता है। प्रतीक दो प्रकार के होते हैं-

परंपरागत या रूढ़ और नवीन छायावाद - युग और उसके बाद के कवियों ने नवीन प्रतीकों का ही प्रयोग अधिक किया है। छायावादी कवियों ने प्रतीक योजना में रूप-गुण-सादृश्य की ओर उतना ध्यान नहीं दिया जितना प्रभाव साम्य की ओर।

४) सामाजिक मनोविज्ञान का समयानुकूल विश्लेषण:

प्रसाद जी ने कामायनी में केवल व्यक्तिगत मनस्तत्व के विकास की ही विवेचना नहीं की है, वरन सामाजिक मनोविज्ञान का भी विश्लेषण किया है, जैसे- १) सारस्वत प्रदेश में जब समृद्धि उच्छृंखलित होती है तब विम्लव और संघर्ष घटित होते हैं। २) जब किसी समाज का अग्रणी अपने बनाये नियमों का पालन नहीं करता तो उके अनुयायियों की श्रद्धा ही उसके प्रति नहीं घटती, बल्कि उनके द्वारा एक विप्लव भी खड़ा हो जाता है जैसे- सारस्वत प्रदेश की प्रजा ने उच्छृंखल नियामक मनु के विरुद्ध किया अब देखता है कि इस काव्यगत मनोवैज्ञानिक तत्त्व के मूल में प्रसाद जी का उद्देश्य है- प्रसाद जी की दृष्टि में बहिर्जगत अन्तर्गत की लीला का विस्तार है। बाह्य जगत में जो कुछ हो रहा है वह हमारे भीतर का ही प्रतिबिम्ब है।

इस प्रकार रूपात्मक दृष्टि से कामायनी की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उसके पात्रों का नाम भी प्रतीकात्मक अर्थ की व्यंजना करते हैं।



निराला की यथार्थ - दृष्टि

ई. एच. कार – ने एक बड़ी महत्वपूर्ण बात की ओर संकेत किया है कि इतिहास वर्तमान और अतीत के बीच निरंतर चलनेवाला एक संवाद है। किसी कविता में यथार्थ को साक्षात्कृत करने की क्षमता का तात्पर्य है – काव्य – भाषा की क्षमता – कवि की रचना - दृष्टि को उजागर, उजागर करने के लिए प्रयत्नशील शब्द संयोजन। इस माने में कविता में निहित यथार्थ की पर भाषिक संरचना की परख होगी और यथार्थ की इस पकड़ का कसाव या ढीलापन अभिव्यक्ति के कसाव या ढीलेपन का सूचक माना जाएगा।

निराला का गद्य साहित्य उनकी यथार्थवादी चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि निराला का किसान –वर्ग से निरंतर प्रगाढ़ संबंध रहा है और यह किसान वर्ग छायावादी युग के बीच में ही अपनी युगों पुरानी निष्क्रियता को छोड़कर एक संघर्षशील वर्ग के रूप में आ चुका था। निराला का इस किसान वर्ग से इतना गहरा लगाव था कि कुल्ली को देखकर उनका ब्रम्हावादी अहंकार चूर-चूर हो गया या पुराने विश्वासों की इमारत हिलने लगी थी और 'अप्सरा' तथा 'अलका' का छायावादी मुलम्या पिघलने लगा था। 'कला के विरह में जोशी बंधु' शीर्षक लेख में निराला पद लिख चुके थे। "सामाजिक हिताहित की चिन्ता न करके मनमाना साहित्य लिखना वैसा ही है, जैसे महमूद मियाँ का अपने बकरे को पूँछ की तरह से जिबह करना।"

१) रुढ़ियों का विरोध :

निराला जी पर वैज्ञानिक युग का पूरा प्रभाव पड़ा है। इन्हे किसी तरह की रुढ़ि में बिलकुल विश्वास नहीं है। ज्योतिषियों द्वारा निर्भित कुण्डली पर भी इनकी आस्था नहीं थी। पंडितों ने लिखा था कि निराला का दो विवाह होगा। कलकत्ता प्रवास से वापस आकर निराला अपनी बच्ची को देखने ससुराल आये हुए थे। कुण्डली देखकर उनके मत की प्रतिक्रिया हुई -

पढ़ लिखे हुए शुभ दो विवाह
हँसता था, मन में बढ़ी चाह
खण्डित करने को भाग्य अंक
देखा भविष्य के अशंकर!

जो लाग विवाह प्रस्ताव लेकर आते थे उन्हें वो नाना प्रकार की बहाना बाजियों से टरका देते थे। एक बार एक सज्जन ने बड़ी ही विनम्र वाणी में इनके विवाह का प्रस्ताव रखा। निराला की सास

जी भी चाहती थी कि ये अपना दूसरा विवाह कर लें ज्यों ही इनकी सास जी इस संबंध में बात करने आयी त्यों ही देखती हैं कि कुण्डली टूकड़े-टुकड़े फट चुकी है और उसके पास सरोज क्रीडा कर रही है। निरला की कुण्डली के प्रति इस उदासीनता ने सास जी को बोलने का अवसर ही नहीं दिया इस प्रकार सामाजिक पारिवारिक दृश्यों का वर्णन बड़ा मार्मिक बन पड़ा है।

२) श्रमजीवि वर्ग :

वह तोड़ती पत्थर में उनकी दृष्टि उस श्रमजीवि वर्ग की और गयी है जो जीवनभर शोषित किया जाता है। जिस वातावरण में तमतमाती हुई लू, जेठ की दोपहरी, वह श्रम श्लय साँवली युवती चित्रित की गई है, वह उसकी विवशता को उबाड़ देता है –

कोई न छायादार वृक्ष
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार
श्याम तन मन बंधा यौवन
प्रियकर्म रत मन गुरु हथौड़ा हाथ
करती बार – बार प्रहार!

३) साम्यवाद प्रहार :

निम्नवर्ग की बस्ती का यर्थाथ चित्र उपस्थित करते हुए गाली और बहार की कथा चलती है। गोली बाग की मालिन की लड़की थी, निम्न वर्ग में पैदा हुई थी और बहार नवाब की नवाबजादी उच्चवर्ग में पैदा हुई थी। किन्तु दोनों में साहचर्य जन्य प्रेम उत्पन्न हो गया था। एक दिन बाग में बहार और गोली घूम रही थी गोली ने गुलाबवाड़ी में उगा कुकुरमुला देखा वह विहबल हो उठी उसने बहार से कहा –

देखो तुम जी भर गुलाब
खायेंगे हम कुकुरमुडता का कबाब
बहार पूछती है, क्या इसका कबाब स्वादिष्ट होता है
भाजियाँ दुनिया में जितनी
इसके सामने नाचीज है।

इसके बाद बहार ने उसकी भाजी खाने की इच्छा प्रकट की। गोली के घर उसे खा लेने के बाद बहार ने कहा, मैंने ऐसा खाना आज तक नहीं खाया, बहार के मुँह कुकुरमुले की कहानी सुनने के बाद नवाब के मुँह में पानी भर आया और उन्होंने तुरंत आजादी कुकुरमुला अभी से आ-ताजा-ताजा माली की इस सूचना पर की अब कुकुरमुला नहीं है, नवाब को बड़ा क्रोध आया।

निराला एक निर्भीक पत्रकार भी थे। 'समन्वय' से लेकर 'मतवाला' होते हुए जब वे सुधा से संपादकीय विभाग में आये तब उनकी पत्रकारिता की चेतना इतनी परिपक्व हो चुकी थी कि वे तत्कालीन भारतीय समस्याओं पर अपनी बेबाक और अचूक टिप्पणी दे सकें।

निराला जी वे इस विवाह की भी हँसी उड़ाते हैं कि मनुष्य की समस्त उपज जनवादी हैं। कुकुरमुला कितनी बड़ी डींग मारता है कि संसार में सब कुछ उसी से पैदा हुआ है जब कि उसकी सार्थकता इतनी ही है कि वह एक क्षण स्वाद लेकर उदरस्य हो जाता है। निराल जी 'सुधा' में टिप्पणी करते हुए लिखते हैं –

“जो समाज पुराना है, हारा हुआ है, वह कितनी ही प्राचीन विभूतियों से युक्त हो, वह नवीन युग के लिए मृत है। उसी से हमें पहले लड़ना था। लड़कर पराष्ट करना था। परास्त कर नये समाज को सजीव और बहुजनों वाला बनाना था।”

निराला के काव्यों में सामाजिक यर्थाथ :

‘सूर्यकान्त त्रिपाठी’ निराला जी हिन्दी के युगान्तकारी कवि हैं तथा छायावादी कवियों में उनका महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी कविता में नवजागरण का सन्देश है, प्रगतिशील चेतना है तथा राष्ट्रीयता का स्वर विद्यमान है। मानव की पीड़ा, परतन्त्रता के प्रति तीव्र आक्रोश उनकी कविताओं में है तथा अन्याय एवं असमानता के प्रति विद्रोह की भावना उनमें सर्वत्र व्याप्त है।

निराला की रचनाओं में आक्रोश एवं विद्रोह की प्रधानता है जिसे डॉ. रामविलास शर्मा ने ओज और औदात्य कहा है। परिस्थितियों के घात-प्रतिघात ने उन्हें उद्बुद्ध, सचेत एवं जागरुक कवि के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। अन्याय, अत्याचार एवं असमानता के विरुद्ध वे जीवन भर संघर्ष करते रहे। मानव की पीड़ा ने उनके संवेदनशील हृदय की करुणा प्लावित कर दिया था। उच्च वर्ग की विलासिता एवं निम्न वर्ग की दीनता को देखकर वे अपने हृदय में गहन वेदना, टीस एवं छटपटाहट का अनुभव करते थे। सामाजिक विषमता के विरुद्ध वे प्रभावी आवाज उठाते रहे। उनके काव्य का मूल स्वर क्रांतिकारी एवं विद्रोही भावनाओं से युक्त है। सामाजिक विषमता के कारण मानव कितना दयनीय बन गया है इसकी अभिव्यक्ति निम्न पंक्तियों में हुई है –

“चाट रहे जुड़ी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए।
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए।।”

इन पंक्तियों के माध्यम से कवि कृषकों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हुए बादलों का आवाहन करते हुए कहते हैं कि हे वीर बादलों! तुम भारत के वीन-हीन किसानों की पुकार को सुनकर यहाँ विम्लव मचाने के लिए अवश्य पधारो। कवि की इन क्रांतिकारी भावनाओं से यह बोध होता है कि निराला सामाजिक विषमताओं को दूर करके सामाजिक समता स्थापित करना चाहते थे। पूंजीपतियों को वे आड़ना दिखाकर कहते हैं कि तुम्हारी यह ‘रंगो आब’ चमक-दमक गरीबों के शोषण पर आधारित है। ऐसे पूंजीपतियों को वे प्रतीकात्मक शैली में फटकारते हुए कहते हैं –

“अबे सुन बे गुलाब।
भूल मत, जो पाई खुशबू रंगो आब।
खून चूसा स्वाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा कैपेटलिस्ट।”

निराला जी के काव्यों में सामाजिक विषमता के प्रति तीव्र आक्रोश सर्वत्र दिखाई देता है। 'भिक्षुक', वह तोड़ती पत्थर जैसी कविताएँ गरीबों के प्रति सहानुभूति से भरी हुई हैं। उस मजदूरनी को दीन दृष्टि में जो पीड़ा है उसकी अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में सहज रूप से हुई है —

“देखते देखा मुझे तो एक बार
उस भवन की ओर देखा छिन्न तार
देख कर कोई नहीं
देखा मुझे उस दृष्टि से जो मार खा रोई नहीं
सजा सहज सितारा।”

निराला एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते हैं जो शोषण मुक्त हो, जहाँ अन्याय एवं अत्याचार के लिए कोई स्थान न हो। वे समता, स्वतंत्रता, न्याय के समर्थक थे और सामाजिक विषमता को हर स्तर पर समाप्त करना चाहते थे।

भारतीय समाज में 'विधवा' की स्थिति कितनी दयनीय है, इसकी अभिव्यक्ति उन्होंने अपनी 'विधवा' शीर्षक कविता में की है :

“वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी
वह दीप शिक्षा-सी शान्त भाव में लीन
वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति रेखा-सी
वह टूटे तरु की छुटी लटा-सी हीन
दलित भारत की ही विधवा है।”

भारत की विधवा नारी अपने आधार तरु से अलग पड़ी मुकुमार लता के समान दीन-हीन एवं दयनीय होती है। भारत को परतंत्रा के प्रति वे जनता को जागरुक करना अपना परम कर्तव्य मानते हैं। उनकी रचनाओं में राष्ट्रीय भावना कूट-कूट कर भरी हुई हैं। 'जागो फिर एक बार' कविता में उन्होंने भारतीय वीरों को अंग्रेज रुपी गीदड़ों का सफाया कर देने का आवाहन करते हैं।

डॉ. भागीरथ मिश्र के अनुसार - “निराला की अधिकांश कविताओं की पृष्ठभूमि में राष्ट्रीयता का रंग विद्यमान मिलेगा।” अतीत गौरव का गान करते हुए उन्होंने जिस राष्ट्रीयता को विकसित किया वह उनकी भारती जय विजय केर, मातृवन्दना जागो फिर एक बार, छत्रपति शिवाजी का पत्र जैसी कविताओं में मुखरित हुई हैं। 'मातृवन्दना' नामक कविता में वे स्पष्ट घोषणा करते हैं कि हे माता तुझे मुक्त करने के लिए मैं तेरे चरणों पर अपने प्राण न्योछावर कर दुंगा।

कवि का हृदय भारतमाता की परतंत्रा से क्षुब्ध हैं, साथ ही भारत की सामाजिक रुढ़ियों से भी दुःखी है। 'विधवा' की दयनीय दशा का चित्रण वे इसी संदर्भ में करते हैं। सामाजिक विषमता को देखकर वे दुर्गा माँ का आवाहन करके ताण्डव नृत्य करने के लिए कहते हैं। जिससे आसुरी शक्तियों का विनाश हो सके, जीर्ण-शीर्ण नष्ट हो जाए और यहाँ नव जीवन का संचार हो जाए।

निराला जी के गीतों में युग-युग से प्रताड़ित, प्रवंचित एवं पीड़ित दलितों के प्रति करुणा है। वे प्रभु से प्रार्थना करते हैं –

दलित जन पर करो करुणा
दीनता पर उतर आए
प्रभु तुम्हारी शक्ति अरुणा।

पूँजीपतियों के प्रति आक्रोश एवं सामाजिक विषमता के प्रति विक्षोभ विद्यमान है। वे जनता को क्रांति के लिए प्रोत्साहित करते हैं। गंगा किनारे बैठे रहने वाले निठले साधु-संन्यासियों के प्रति जनता की श्रद्धा-भक्ति पर वे करारा व्यंग्य करते हैं। निराला की दृष्टि से तत्कालिन जीवन का कोई दृश्य छूटा नहीं है। अपने व्यंग्यों से उन्होंने तत्कालीन सामाजिक चेतना को झकझोरने का प्रयास किया है। कभी वे सामंतवादी व्यवस्था पर प्रहार करते हैं तो कभी जमींदारों और अंग्रेजों के अत्याचार का पर्दाफाश करते हैं।

इस विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि निराला ने 'जगत एवं जीवन में व्याप्त विसंगतियों पर करारे प्रहार किए हैं।'

वे विचारों से क्रांतिकारी एवं दीन-दुखियों के समर्थक कवि हैं। शोषकों, साम्राज्यवादियों एवं पूँजीपतियों के प्रति उनके मन में आक्रोश है। वे शोषण के विरोधी हैं। राष्ट्रभक्ति, स्वातंत्र्य चेतना एवं आत्मगौरव के भाव उनमें व्याप्त हैं। निर्विवाद रूप से यह माना जा सकता है कि निराला ने युग चेतना के अनुरूप ही अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि विकसित की है।



ओज और पौरुष के कवि 'निराला'

काव्य का केन्द्र व्यक्तित्व है। व्यक्तित्व की चरम अवस्था वह है जब वह सर्जन करता है। सर्जनात्मक प्रतिभा में ही उसकी पूर्णता है। काव्य के अन्तर की गहराइयों में है, काव्य अध्ययन की दिशा में व्यक्तित्व के भी अध्ययन का महत्त्व है। यह भी हम जानते हैं कि निराला जी काव्य में ही नहीं व्यक्तिगत जीवन में भी विद्रोही रहे हैं। हिन्दी के लिए निराला का व्यक्तित्व एक ऐतिहासिक उपलब्धि हैं। उसी प्रकार उनका काव्य उसी के अनुरूप युगान्तकारी शताब्दी की महान उपलब्धि है।

शौर्य और राष्ट्रीय शक्ति के उपासक :

निराला के काव्य में हिन्दी भाषी जनता के तारुण्य के पंख पहली बार शौर्य, राष्ट्रप्रेम उनका ओज प्रधान काव्य है। भाषा और छंदों का सम्पूर्ण सामर्थ्य लेकर वे चले हैं और अपनी पंक्तियों में सशक्त प्राड़ उड़ेल दिए हैं। भारत स्वाधीन हुआ किंतु जिस स्वाधीन भारत का स्वप्न निराला हुआ किंतु जिस स्वाधीन भारत का स्वप्न निराला देख रहे थे, वह साकार न हुआ। साहित्य में अवसरवादिता, चाटुकारिता की बाढ़-सी आ गई, उच्चवर्ग समृद्ध हुए, निम्नवर्ग को दैन्य से मुक्ति न मिली। निराला ने इस स्थिति का भावचित्र खींचा। -

मंदिर में बंदी हैं चारण,
चिघर रहे हैं वन में रावण
रोता है बालक निष्कारण
बिना – सरण – सारण भारणी है।

साहित्य जीवन के आरंभ से लेकर आखिरी दौर तक साहित्य के विभिन्न रूपों में और उसके विभिन्न स्तरों पर देश को सुखी, स्वाधीन और समृद्ध देखने की आकांक्षा उन्हें प्रेरित करती हैं। जहाँ वे अपने कंठ को पूरा खोलते हैं जैसे - 'कुण्डलिनी जाग जाती हैं'। इस दृष्टि से निराला शक्ति के उपासक हैं। राष्ट्रीय काव्य का पांचजन्य उनसे पहले बन चुका था, परन्तु उसका स्वर नीचा था मगर निराला की रचनाओं में वह जयघोष बन गया, जो कि जागो फिर एक बार इस संदर्भ में देखी जा सकती हैं। ओज निराला की विशेषता रही हैं। इस विशेषता के पल्लव में उनकी सुदीर्घ देह, उनका दीप्त कंठस्वर, प्रशस्त भाव भंगिमार्थ, भावना पूर्ण काव्य और समर्थ भाषा का समतुल्य योग उन्हें मिला है। विद्रोह और चुनौती उनके तारुण के प्रमुख उपसर्ग हैं, परंतु इनके पीछे समर्थ निर्माण की संपूर्ण योजना है।

निराला जी के काव्य में वैयक्तिकता को अभिव्यक्ति मिली है। इन्होंने अपनी आंतरिक अनुभूति को 'अपरा' की कई कविताओं में व्यक्त किया है। जूही की कली, हिन्दी के सुमनों के

प्रति, मैं अकेला, राम की शक्तिपूजा, विफल वासना स्नेह-निर्झर बह गया है, सरोज अभिव्यक्ति आदि अनेक कविताओं में हमें निराला की वैयक्तिक भावनाओं की सफल अभिव्यक्ति मिलती है। 'विफल वासना' की ये पक्तियाँ प्रत्यक्ष विधि से वैयक्तिक मनोभाव की अभिव्यक्ति का सुन्दर उदाहरण हैं।

तुम्हें कैसे प्रिय बतलाऊ मैं ?
वैसे ही मैंने अपना सर्वस्व गँवाया,
रूप और यौवन – चिन्ता में, पर क्या पाया ?

राम की शक्तिपूजा में निराला जी ने राम के माध्यम से परोक्ष विधि से अपने ही संघर्षपूर्ण जीवन की भत्सर्ना की है, यथा –

धिक जीवन जो पाता ही आया है विरोध।
धिक साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।

१) निराला के काव्य में विद्रोह का स्वर :

प्राचीन एवं परंपरा के विरुद्ध विद्रोह तथा स्वच्छन्दता का वरण अंग्रेजी के Romantic काव्य तथा हिन्दी के छायावाद के काव्य की मूल प्रेरणा रही हैं। निराला जी अन्य छायावादी कवियों की अपेक्षा कहीं अधिक विद्रोही एवं स्वच्छन्दता के प्रेमी रहे थे। वह तो जीवन पर्यन्त विद्रोह एवं संघर्ष ही करते रहे। अपरा की कई कविताओं में यह प्रवृत्ति मुखर है।

धन, गर्जन से भर दे वन
तरु - तरु पाद प – पातन – तन।
गरजो, हे मन्द्र, वज्र – स्वर
थर्राये भूधर भूधर। इत्यादि।

२) देश-प्रेम की अभिव्यक्ति :

देश के सांस्कृतिक पतन की ओर निरालाजी ने बड़ी ओजस्विनी भाषा में इंगित किये हैं। उनका कहना है, कि देश के भाग्याकाश को विदेशी शासन के राहु ने ग्रस रखा है। वह चाहते हैं कि किसी प्रकार देश का भाग्योदय हो और भारतीय जन-मन आनंद विभोर हो उठे। भारती वन्दना, जागो फिर एक बार, तुलसीदास, छत्रपति शिवाजी का पत्र आदि कविताओं को निरालाजी ने देश भक्ति के भाव प्रकट किए हैं –

सोचो तुम,
उठती है नग्न तलवार अब स्वतंत्रता की,
कितने ही भावों से
याद दिलाकर दुःख दारुण परतंत्रता की
फूँकवी स्वतंत्रता निज मन्त्र से जब व्याकूल कान,
कौन वह सुमेरु, जो रेणु रेणु न हो जाए।

निराला ने कई स्थलों पर समाज-सुधार के प्रति भी अपनी चेतना की अभिव्यक्ति प्रदान की हैं।

३) सामाजिक चेतना :

कुछ अलोचकों का मत है कि छायावादी कवि पलायनवादी हैं। परन्तु वस्तु स्थिति ऐसी नहीं है। प्रत्येक छायावादी कवि के काव्य में हमको सामाजिक चेतना के दर्शन होते हैं। निराला चाहते हैं कि समाज का प्रत्येक प्राणी सुखी हो। निराला ने अपने प्रसिद्ध वन्दना गीत 'वर दे वीणा वादिनि वर दे' में प्रार्थना किए हैं कि मानव-समाज में नवीन शक्तियों का अविर्भाव हो, जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्य का पालन कर सके।

४) प्रकृति के प्रति प्रेम :

प्रकृति के प्रति प्रेम छायावाद का एवं निराला का एक महत्वपूर्ण तत्व है। 'बादल राग' में प्रकृति का आलम्बन रूप में वर्णन दृष्टव्य है – तरंगों के प्रति, प्रकृति के प्रति सहानुभूति की अभिव्यक्ति है। देवी सरस्वती में नवीन ढंग का षट्ऋतु वर्णन है।

प्रकृति पर चेतना का आरोप तथा प्रकृति का मानवीकरण के प्रकृति-वर्णन की मुख्य विशेषता है। निराला ने प्रकृति पर सर्वत्र चेतना का आरोप किया है। उनकी दृष्टि में बादल, प्रपात, यमुना सभी कुछ चेतन है। वह यमुना से पूछते हैं कि –

तू किस विस्मृति की वीणा से,
उठ उठ कर कातर झंकार।
उत्सुकता से उकता-उकता,
खोल रही स्मृति के दृढ़-द्वार ?

अपने युग की विचारधाराओं के बीच निराला की दृष्टि उन्नत है। वह परिवेश को देखती हैं, भविष्य को भी। प्रभामंडलों से आंतकित न होकर वह सामाजिक संबंधों के आंतरिक सूत्रों तक पहुँचती है। इसलिए क्रांतिकारी कवियों में निराला का स्थान अन्यतम है। निराला की कविताओं को केवल विरोध और विद्रोह तक सीमित न मानकर निर्माण और सृष्टि की नई आधार भूमि की कविता मानना ज्यादा अच्छा होगा। वे अपनी बोली-बानी में मिट्टी की गंध से अधिक अपनापन जोड़ सके थे।





राम की शक्ति-पूजा एक 'महाकाव्य'

'राम की शक्ति-पूजा' पाश्चात्य महाकाव्यों का अधिक स्मरण दिलाती है, उन महाकाव्यों में उनका सानिध्य सबसे अधिक दिखाई देता है। महाप्राण निराला की 'राम की शक्ति-पूजा' जैसी बहुचर्चित कविता पर आज के समीक्षक का लिखना खतरे से खाली नहीं है। कविता के प्रेमी अनेक समीक्षकों ने इस कविता पर विस्तार से लिखा है या छोटी-बड़ी टिप्पणियाँ दी हैं। ऐसी स्थिति में सबसे बड़ा खतरा पिष्ट-पेषण का तो है ही, मौलिक दृष्टिकोण या मौलिक व्याख्या के मोह में कविता के प्रति अन्याय होने की सम्भावना भी कम नहीं है। परन्तु किसी भी कालजयी रचना का यह एक महत्वपूर्ण लक्षण बताया जाता है कि उसमें अच्छे-बुरे रूप में चुनौतियाँ देने की क्षमता विद्वान हो और काल के किसी भी बिन्दु पर पाठक अथवा आलोचक उस रचना के प्रति अपनी अच्छी बुरी प्रतिक्रिया व्यक्त किये बिना न रह सके। इस लिए निराला की कविता 'राम की शक्ति-पूजा' इस कसौटी पर निश्चय ही पूरी खरी उतरती है।

महाकाव्य का स्वरूप :

भारतीय तथा विदेशी प्राचीन एवं अर्वाचीन विद्वानों ने महाकाव्य के स्वरूप को विभिन्न प्रकार से निर्धारित करने का प्रयत्न किया है। इन विभिन्न परिभाषाओं के समन्वय स्वरूप महाकाव्य के प्रमुख लक्षण इस प्रकार ठहरते हैं —

१. यह एक छन्दबद्ध एवं सर्गबद्ध कथात्मक काव्य है।
२. इसमें जीवन का सुनियोजित एवं सांगोपांग वर्णन होता है।
३. इसमें विभिन्न प्रकार के वर्णन-वस्तु-वर्णन एवं भाव-वर्णन होते हैं।
४. यह रसात्मकता उत्पन्न करने में समर्थ होता है।
५. इसमें किसी लोक — विश्रुत चरित्र का वर्णन होता है।
६. इसकी शैली उदात्त एवं गरिमामयी होती है।
७. जीवनी शक्ति इसका प्रधान तत्त्व है।
८. यह जातीय भावों का प्रतिनिधित्व करता है, अर्थात् यह घटनाओं का आश्रय लेकर संश्लिष्ट और समन्वित रूप से जाति-विशेष और युग-विशेष के समग्र जीवन के विविध रूपों, पक्षों, मानसिक अवस्थाओं अथवा नाना रूपात्मक कार्यों का वर्णन और उद्घाटन करता है।

राम की शक्ति-पूजा : महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणों की कसौटी पर :

राम की शक्ति-पूजा में आंशिक रूप से शास्त्रीय लक्षणों का निर्वाह मिलता है। इसका कथानक महान एवं लोक विस्तृत हैं, चरित्र भी महान है तथा इसकी शैली उदात्त गरिमामयी है। इसके विपरीत इसमें महाकाव्य जैसी व्यापकता एवं समग्रता का अभाव है। इसमें न तो जीवन का समग्र वर्णन ही है और न जाति एवं युग-विशेष का संश्लिष्ट वर्णन है। इसके अतिरिक्त इसमें पात्रों की संख्या सीमित है, खडों के विभाजन, समाज और प्रकृति के विभिन्न रूपों के उद्घाटन का अभाव है। अतः शास्त्रीय लक्षणों के आधार पर हम इसको महाकाव्य नहीं मान सकते हैं।

क्या यह एक खण्डकाव्य है –

आकार की लघुता के कारण इसको खण्डकाव्य भी नहीं कहा जा सकता है। विरोध में कुछ लोगों का कहना है कि आकार को किसी भी काव्य रूप का निर्णायक मानदण्ड मानना अनुचित है। अपने मत के समर्थन में वे आनन्दवर्द्धन के उस कथन को उद्धृत करते हैं जिसके अनुसार उन्होंने अमरुक के एक-एक श्लोक को महाकाव्य के गौरव का अधिकारी घोषित किया था। हमारा विचार है कि काव्य में अभिधा के अतिरिक्त लक्षा-व्यंजना नाम की शब्द-शक्तियाँ भी होती हैं। आनन्द वर्द्धन के कथन को मात्र अभिधार्य में नहीं लेना चाहिए। अन्यथा विहारी की सतसई सात सौ महाकाव्यों की जननी बन जायेगी और महाकाव्य एवं इतर काव्य में कुछ भी अन्तर ही नहीं रह जाये। यदि आकार, कथा प्रबन्ध के मानदण्ड समाप्त कर दिये जाते हैं तब तो प्रबन्ध-काव्य और मुक्तक काव्यों का अंतर भी समाप्त कर देना पड़ेगा। केवल बारह पृष्ठों की कविता को श्रेष्ठ कविता कहना भी कम गौरव की बात नहीं है। हम इसको प्रबन्धात्मक कविता कहना ही समीचीन समझते हैं।

जीवन शक्ति की कसौटी पर :

जीवनी शक्ति महाकाव्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है। इसमें युग, समाज, राष्ट्र-विशेष की समग्र जीवनी शक्ति मुखरित हो उठती है। एक आलोचक के शब्दों में, समाज की उददम जिजीविषा, अखण्ड वेग और अजस्त्र प्रवाह जिसे सशक्त और जीवान्त रूप से किसी जातीय महाकाव्य में दिखाई पड़ता है, वैसा मानव की अन्य किसी कृति में नहीं। अत एव स्पष्ट है कि महाकाव्य की मुख्य कसौटी उसकी जीवनी शक्ति है।

‘राम की शक्ति-पूजा’ की यह कथा मानव की उस जीवनी शक्ति की अमर कहानी है, जिसके द्वारा मानव विघ्न – बाधाओं पर विजय प्राप्त करता आया है। मानव सभ्यता जीवन शक्ति के कर्षों पर चढ़कर ही वर्तमान विकसित अवस्था को प्राप्त हुई है। राम की यह कथा मानव के इसी अनवरत संघर्ष की प्रतीक बनकर हमारे सामने आती है।

डॉ. रामविलास के शब्दों में : “इसकी प्रतीक व्यंजना अद्भुत है। रावण समस्त तमोगुणी विघ्न बाधाओं का प्रतिनिधि मात्र दिखाई पड़ता है। उसके साथ शिव, आकार और शक्ति सभी क्रियाशील जान पड़ते हैं। इस अनन्त तमोगुण में राम के दिव्यशर श्रीहत होकर कहीं खो जाते हैं। मनुष्य का मन पराजित होकर पराजय स्वीकार नहीं करता युद्ध के लिये, विजय के लिए वह पुनः चेष्टा करता है। राम की शक्तिपूजा का यही महान आशावादी संदेश है।”

अपने लघु कलेवर में इतना महान आशावादी सन्देश छिपाये रखने वाली काव्य-कृति महाकाव्य की कोटि में रखी जाने योग्य है।

महाकाव्य की सबसे बड़ी सफलता इस बात से आँकी जाती है कि वह समाज को कितनी शक्ति कितना साहस कितनी उमंग और कितनी आस्था प्रदान करता है। निराला की यह काव्य – कृति आज के त्रस्त, हताश मानव को जाम्बवान के समान यही महान सन्देश देती है कि आधुनिक मानव के प्रस्तुत विषय परिस्थितियों से त्राण पाने के लिए शक्ति का मौलिक आराधना करना पड़ेगा।

जातीय भावों का प्रतिनिधित्व :

राम की शक्तिपूजा के राम व्यक्ति राम न होकर हमारे सामने उस मानव के प्रतिनिधि के रूप में आते हैं, जो निरुत्तर विषमताओं के विरुद्ध संघर्ष करता आया है। राम ब्रम्ह के अवतार न होकर युग के नैतिक मूल्यों को रक्षा और स्थापना करने वाले मानव राम हैं। वह एक युग-विशेष के प्रतिनिधि न होकर युग-युग के प्रतिनिधि हैं।

शक्ति रावण रूपी अन्याय का समर्थन करती है और इस प्रकार नैतिक मूल्य के क्षेत्र में एक विघटन की स्थिति उत्पन्न होती है। राम इसी का निराकरण करते हैं और नैतिक मूल्यों के पुनर्स्थापन में सफल होते हैं। महाकाव्य की भाँति 'राम की शक्ति-पूजा' भी जातीय भावों का प्रतिनिधित्व करती है।

उदात्त, गरिमामयी शैली :

महान संदेश को अभिव्यक्त करने के लिए निराला ने उसके अनुरूप ही महान उदात्त और गरिमामयी शैली को अपनाया है। 'राम की शक्ति-पूजा' महाकाव्योचित गाम्भीर्य एवं प्राणवत्ता है। इस काव्य-कृति की शैली में हमको नाटकीय क्षिप्रता, भावों का मार्मिक – उत्तायन पतन सशक्त विम्बयोजना; सुन्दर प्रतीक-विधान, प्रांजल – भाषा से उत्पन्न उदात्तता आदि गुणों के दर्शन होते हैं। इन्हे देखकर ही अनेक आलोचक इस महाकाव्य कह देते हैं।

निष्कर्ष : शास्त्रीय लक्षणों की कसौटी पर 'राम की शक्ति-पूजा' एक प्रबन्धात्मक कविता है। उसको महाकाव्य या खण्डकाव्य कहना काव्यशास्त्र की उपेक्षा करता है। उसका संदेश महाकाव्य के समान है और उसकी शैली संदेश के अनुरूप गरिमामयी है। परन्तु विशालता, व्यापकता तथा जातीय प्रतिनिधित्व के क्षेत्र में यह काव्य कृति महाकाव्य के बहुत पीछे रह जाती है।





सरोज-स्मृति एक शोक गीत

‘सरोज-स्मृति’ निराला का प्रसिद्ध शोक-गीत है। अपनी पुत्री सरोज के असामायिक निधन पर निराला ने शोक संतप्त हृदय की विहल भावनाओं को इस रचना में वाणी दी है। अठ्ठराह वर्ष की अल्पायु में ही कवि पुत्री की मृत्यु ने भावुक पितृ-हृदय को किस प्रकार आहत किया, ‘सरोज-स्मृति’ उस स्थिति का पूर्ण अंकन करती है। अपनी हार्दिकता, ममतापूर्ण वात्सल्य और आत्मप्रताड़ना से संयुक्त इस कविता में कवि के व्यक्तित्व का आलेखन भी है और अभिव्यक्ति की सुथराई भी। भाव और शिल्प का चमत्कार पूर्ण संगठन इस कविता को श्रेष्ठ शोक – गीत में स्थान दिलाता है।

शोक गीत पश्चिमी काव्य-साहित्य की एक मार्मिक विधा है। जिसका आधार कोई युवा – दिवंगत उस व्यक्ति के अभाव की पीड़ा हुआ करती है। किन्तु शोकगीतों में पश्चिमी का कवि शोक संवेदनशील अभिव्यंजना तक ही सीमित न रहकर, दार्शनिक आधारशिला पर प्रायः स्थिर होकर इहलोक – परलोक की सीमाओं के बीच अमर हुई दिवंगत आत्मा के जीवन-सत्त्वों से किसी संतोषप्रद सशक्त जीवन-दर्शन की स्थापना भी करता आया है जिसमें कवि तथा दिवंगत व्यक्ति से संबंध युग तथा समाज की चिन्ताओं के शिखर भी ऊपर उठ जाते हैं, जिनके चतुर्दिक कवि का व्यक्तिगत शोक ‘फेनोच्छवसितपयोदधि’ की भांति वेदना की तिमिराच्छन्न रात्रि में उमड़ता हुआ रक्ताभुषा के आगमन पर स्थिर एवं शांत हो जाता है।

‘सरोज-स्मृति’ हिन्दी का एक मात्र प्रसिद्ध शोकगीत है –

जिसे जीवन की समस्त पीड़ाओं, संघर्षों एवं अन्तर्द्वन्द्वों से गुजरे हुए कवि निराला ने अपनी पुत्री सरोज की युवा मृत्यु पर लिखा है। इस समय तक निराला अपने कवि मन के अनेक प्रौढ़ उतार-चढ़ाव की अनुभूतियों, सौंदर्यबोध, विद्रोह आदि की मनःस्थितियों से गुजर चुके थे। वह अपने जीवन की संघर्षमयता, नयेपन तथा उदारता आदि को अच्छी तरह पहचानता था, युगीन चेतनाओं से उसका भरपूर नाता हो चुका था और वह एक संपूर्ण कवि थे जिसने जीवन का सर्वस्व निछावर कर माँ सरस्वती की अर्चना की थी। यह पुत्री सरोज की मृत्यु थी, जिसे वह जीवित कविता समझता था। पुत्री के वियोग में निराला को जो मूक-व्यथा हुई, उसी का उच्छ्वास है ‘सरोज-स्मृति’। एक सर्वांग शोकगीत लिखने की दृष्टि से नहीं बल्कि एक कथा की मार्मिक तथा यथार्थ अभिव्यक्ति की ही दृष्टि से यह कविता लिखी गई होगी, जिसे अपने आप शोकगीतात्मक संवेदन प्राप्त है, यद्यपि छन्द स्वच्छंद तथा अनुभूतियों का रूप अत्यंत यथार्थवादी तथा कटु होने के साथ-साथ करुण है, जिससे पाठक में करुण तथा सहानुभूति का उद्भव होता है। एक व्यथा कवि के मन में हमेशा है, कि वह सरोज के लिए कुछ नहीं कर सकें। कविता के दार्शनिक पक्ष का जहाँ तक प्रश्न है, यह पक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं –

“चढ़ मृत्यु तरणि पर तृण वरण
कह पितः पूर्ण आलोक वरण
कहती हूँ मैं, यह नहीं मरण
सरोज का ज्योतिः शरण-तरण।”

किंतु ‘सरोज-स्मृति’ ने निराला जी की दार्शनिकता का धरातल पाकर उनके जीवन के वास्तविक तथा कटु सत्यों के व्यावहारिक चिन्तनों का अधिक संस्पर्श पाया है और इस कविता में केवल सरोज के नहीं अपितु कवि के भी व्यक्तित्व का पूर्ण दर्शन होता है। जहाँ आत्मजा की साक्षात् मृत्यु समक्ष हो, वहाँ कवि का मत ही बोल सकता है, बुद्धि नहीं, क्योंकि कवि ऐसे मौकों पर पलायनवादी नहीं, जो दर्शन की ओट सिर्फ इसलिए लें, कि उन्हें मृत्यु और कटुता का विस्मरण चाहिए। इसलिए कविता का अंत में स्वर धीमा पड़ गया है, व्यथा तीक्ष्ण हो गई है और अपने ही हाथ से कवि ने पुत्री का तर्पण कर दिया है।

राम की शक्तिपूजा में श्यामा अवतरित होकर राम के बदल में लीन हो गई हैं। सरोज-स्मृति में कवि पर श्यामाकी छाप है —

वांछित उस किस लांछित छवि पर
फेरती स्नेह की कूंची भर।

संघर्ष निराला का उस समय तक का जीवन अपनी यातानाओं, अदम्य उद्धतपन तथा सरोज की मृत्यु से उपजी करुणा लेकर ‘सरोज-स्मृति’ में लड़खड़ाता हुआ सा लगता है। दुःख धनीभूत हो गया है कि शक्ति जवाब दे गयी है। युद्ध - भूमि का चित्र कवि की करुणा पलकों के नीचे उतरा हुआ था। सरोज का चित्र पार्श्व है और कवि के हाथ शिथिल हो गये हैं। इस व्यथा से अभिभूत निराला ने कितनी निर्बलता महसूस की होगी, यह इन से स्पष्ट है —

तू गई स्वर्ग, क्या यह विचार
जब पिता करेंगे मार्ग पर
यह अक्षम अति, तब मैं सक्षम
तारूँगी कर गह दुस्तर तम ?
फिर आगे
“धन्ये, मैं पिता निरर्थक था
कुछ भी तेरे हित न कर सका।”

जीवन के ‘स्वार्थ-समर’ में कवि हमेशा पीछे रहा है, क्योंकि वह ‘क्षीण का न छीना कभी अन्न’ की भावना से जीवन की डगर मापता आया है और उसमें अन्तर्निहित विश्व पीड़ा को समझता है, इसलिये सरोज को अनुचित दंग से कमाई हुई, संपत्ति से पहनाकर चीनांशुक रख सका न दधिमुख। ध्यान देने की बात है कि विश्व इसी व्यापक पीड़ा तथा शोषण की अनुभूति का परिणाम है कि कवि निराला ने वस्त्रहीन रहकर भी कितने भिक्षुओं तथा दरिद्रों को रजाई-ओढ़नी दी है।

जीवन के महासागर में उन्होंने जो भी कटु अनुभूतियाँ की हैं उनके प्रति वे इस कविता में पूर्णतः सजग ईमानदार तथा कटु रहे हैं। स्वतंत्र व्यंग्य का वार बहुत तीक्ष्ण होकर व्यक्त हुआ

है, किन्तु इसमें यथा चित्रण हमें सरोज की स्मृति से दूर कभी नहीं ले गया है लगता जैसे सरोज बैठी है और भावुक मन पीड़ित कवि अपनी सारी कथा जो उसे बचपन में नहीं सुना सका, अब सही-सही सुना रहा है। फिर भी कुछ अनकहा रहा गया है – क्या कहूँ आज जो नहीं कहीं। किन्तु निराला अपने जीवन में क्या रहा देखना हो तो इन पंक्तियों को उठाया जा सकता है –

“खंडित करने को भाग्य अंक
देखा भविष्य के प्रति अशंक
कुंडिली दिखा बोला – ए – लो
आई तू दिया, कहा खेलो
संकेत किया मैंने अखिन
जिस और कुंडली छिन्न-छिन्न।”

अपनी कविता की अपने समकालीन पाठको, संपादकों से अस्वीकृति, कवि की मौलिकता, भाषा और उसके विद्रोह रूप पर तरह-तरह के आपेक्ष, आर्थिक विपन्नता, एकाकीपन-सभी प्रत्यक्ष और साफ है।

इसी तरह शोषक द्विज – गुण भी यहाँ कान्य कुब्ज कुलांगर के रूप में प्रत्यक्ष विद्यमान हैं –

“वे कान्य कुब्ज-कुल कुलांगर
खाकर पत्तल करें छेद
इनके कर कन्या अर्थ खेद
इस विषम बलि में विष ही फल
यह दग्ध मरुस्थल नहीं सुजल।”

अपने जीवन पर विहगम - दृष्टि डालते हुए निराला संपादकों और कान्य-कब्जों पर जमकर व्यंग्य किया है। वे ऐसे हिमांचल नहीं हैं जो सामाजिक रुढ़ियों के प्रति अन्धतापूर्वक आस्थावान 'ऐसे शिव से गिरजा विवाह' कर दें। इसके अतिरिक्त युगीन तथा चिन्ताओं में घूमकर कवि अधिक व्यापक नहीं हो पाया है, पास में बैठी हुई सरोज की दिवंगत आत्मा उसे अपने पास से हटने नहीं देती।

सरोज दुःख तथा निर्धनता की एक पुत्री है। जिसका जीवन पिता से दूर 'मामा-मामी' उसके प्रति अगाध प्यारा भाई से लड़ते-झगड़ते, मानते मनाते नानी के घर में वह बड़ी हुई जैसे कोई विजन-वल्लरी हो। सभ्य तथा शिष्ट लोगों वाले आज के समाज से दूर सरोज प्रकृति तथा ग्रामीण जीवन में अपने आप बढ़कर बड़ी हुई, स्वभाव – मत-शरीर तथा गीत का स्वयं स्वाभाविक विकास हुआ। वह निर्दोष – सौंदर्य तथा सीधी-सादी अनुभूतिमयी कविता की प्रतीक है। कवि ने कविता साथ ही 'गीते' नाम से संबोधित करके उसके जीवन से निःसंगता पर भी बड़ी मार्मिक इंगित किया है। कवि कभी उसे देख आता है और उसी के लिए उन्होंने पुनः विवाह नहीं किया है। उपार्जन 'अक्षम' कवि अपने जीवन का अकेला पंथ चलाता गया और सरोज नानी के घर बड़ी होती गई। स्वर फूटा, शिक्षा का प्रबंध न होने पर भी पिता से प्राप्त सजह स्वरममता फूट पड़ी।

“कन्ये गत कर्मो का अर्पण
कर, करता मैं तेरा तर्पण।”

किन्तु कवि ने पूरी कविता में दुर्बेब या दुर्भाग्य के प्रति कही घुटने नहीं टेकें हैं, बल्कि खंडित करने को भाग्य अंक की बात कही है। वेदान्ती कवि सचमुच उसकी दिवंगत-आत्मा को ‘ज्योतिःशरण’ मानता है।

विशेषता :

कतिपय विद्वान ‘सरोज-स्मृति’ को शोक-गीत नहीं मानते, उनका तर्क है कि शोक स्थायी भाव का आघान्त व्याप्त होना ‘शोक-गीत’ की अनिवार्यतम शर्त है जो सरोज-स्मृति में नहीं है। फिर भी ‘सरोज-स्मृति’ हिन्दी में अपने ढंगकी अनूठी तथा कारुणिक कविता है, जिसके अंग-प्रत्यंग में सरोज की कोमलता तथा कवि के जीवन के संघर्षों की आंधियाँ एक साथ प्रखर होती है। निराला की आत्मनिष्ठा तथा समाज निष्ठा दोनों वृत्तियाँ उसमे सजग रही है, यद्यपि वह अपने व्यक्तित्व जीवन तथा स्वाभाविक अनुभूतियों से परे कठिनताओं के दार्शनिक शिखरों पर नहीं चढ़ा पाया है। यथार्थ ही सही अनुभूतियों के धागों में बंधा हुआ उतरता गया है,..... भी दिल तोड़ स्तुय होते हैं जिसकी चर्चा करते कंठ रूँध जाता है। सरोज की परिचर्चा का समुचित प्रबंध अर्थाभाव में नहीं कर सका है और यह कहकर समाप्त है - ‘क्या कहूँ आज जो नहीं कही।’





मुक्तिबोध की फैण्टेसी एवं अंधेरे में

फैण्टेसी ग्रीक शब्द 'फैण्टेसिया' से आया है, जिसका अर्थ - "मानव की प्रवाह रूप में या मांग पर एक काल्पनिक दुनिया निर्माण करने की अद्भुत सामर्थ्य"। मुक्तिबोध की कथा फैण्टेसी की कला है। बाहरी यथार्थ के सम्पर्क से कवि के लक्ष्य में जो प्रतिक्रिया होती है, उसमें कल्पना के योग से मुक्तिबोध ऐसे चित्र खड़े करते हैं। जिनमें अद्भुत और विलक्षणता का रोमांचक योग रहता है। मुक्तिबोध की कविताओं में मिलनेवाला वातावरण बड़ा ही 'फैण्टेस्टिक' है। वे अपनी कविताओं की विशाल पटभूमि पर भयानक रहस्यमयता से भरपूर दिल दहला देनेवाली फैण्टेसी की सजीव सर्जना बड़ी बारीकी से करते हैं तथा उसमें अपने विचारों की लड़ियाँ बड़ी कुशलता से पिरो देते हैं। 'ब्रह्मराक्षस' की अंधेरे में कविताएँ उनकी सफल फैण्टेसी की सृजन क्षमता का उत्कृष्ट उदाहरण है जितना प्रखर यथार्थ बोध, उतनीही सशक्त फैण्टेसी की रचना।

मुक्तिबोध की यह मान्यता थी कि यथार्थ कलात्मक परिणति में फंतासी के माध्यम से ही संभव हो सकता है। उनकी कविताओं में एक ओर सुनसान, वीरान, बियावान सन्नाटा है, चीखना चिल्लाना, कांपना, थरथराना है, तो दूसरी ओर भयप्रद यथार्थ-बोध, हत्या, दुर्घटना, आग, गोली राईफल, नारा, जूलूस, कर्फ्यू आदि अपने सम्पूर्ण आवेग में साथ आए हैं। रहस्ययुक्त लोक की निर्मिति भी गडढ़ा, तालाब, कोठरी, तहखाने, तिलस्म, खोट, तम-विवर, अंधेरे की सुरंग, गली, समुद्र तल की बस्ती आदि हुई है।

वस्तुतः मुक्ति बोध का प्रखर यथार्थ - बोध अपनी अभिव्यक्ति के लिए फैण्टेसी को चुनता है। उन्होंने यथार्थ संसार के भीषण अन्द्वन्द तथा उसकी बहुस्तरीयता को उभारने के लिए फैण्टेसी का एक औजाद के रूप में प्रयोग किया। उनकी फैण्टेसियों की विशेषता यह है कि वे प्याज के छिलकों की भाँति पर्त-दर-पर्त खुलती चली जाती हैं। दृश्य बदलते जाते हैं और यथार्थ की सजीव छबियाँ सामने फिल्म रील की तरह उद्घाटित होती जाती हैं। तीखा मर्म तक चुभने वाला तेज धार से युक्त कथा स्पष्ट तर होता चलता है और कविता के यथार्थ से उसने अभी साक्षात्कार किया है वह फैण्टेसी है जीवन का प्रत्यक्ष - सत्य 'अंधेरे में' कविता का सफल उदा. हो सकता है।

मुक्तिबोध ने फैण्टेसी का प्रयोग बुर्जुआ और प्रतिक्रियावादी समाज को नंगा करने और वास्तविकता को उघाड़ने के लिए किया है। इनकी कविताओं में मनुष्य की जिजीविषा संघर्ष क्षमता और अपराजेय शक्ति के चित्र उभरकर आए हैं उनकी पक्ष धरता और संघर्ष-चेतना का वहाँ दर्शन भी होता है।

मुक्तिबोध के लिए फैण्टेंसी कला –सृजन- प्रक्रिया की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा अनिवार्य स्थिति है। एक साहित्यिक की डायरी में उन्होंने तीसरा क्षण लेख के अन्तर्गत इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण विचारप्रकट किए हैं - “कला का पहला क्षण है” जीवन का उत्कट तीव्र अनुभव क्षण दूसरा क्षण है इस अनुभव का जपने करके दुखते हुए भूलों से पृथक् हो जाना और एक ऐसी फैण्टेंसी का रूप धारण कर लेना मानो वह फैण्टेंसी अपनी आँखों के सामने ही खड़ी हो। तीसरा और अन्तिम क्षण इस फैण्टेंसी के शब्द बंद होने की प्रक्रिया का आरंभ और उस प्रक्रिया की परिपूर्णावस्था तक की गतिमानता × × ———

फैण्टेंसी को शब्द बद्ध करने की प्रक्रिया के दौरान जो – जो सृजन होता है, जिसके कारण कृति क्रमशः विकसित होती जाती है – वही कला का तीसरा और अंतिम क्षण है।

फैण्टेंसी अनुभव की कन्या है और उस कन्या का अपना स्वतंत्र विकासमान व्यक्तित्व है, वह अनुभव से प्रसूत है इसलिए वह उससे स्वतंत्र है।

दिवा-स्वप्न में व्यक्ति अपने को यथार्थ के साथ समायोजित कर लेता है। शिल्प से धरातल पर स्वप्न कथा का सहारा ‘अंधेरे में’ कविता में लिया गया है। इस शिल्प-प्रयोग के कारण कविता का काव्य नाटकीय हुआ है। और कविता में कथ्यों को कई खण्ड आपस में इस प्रकार जुड़कर आए हैं कि वे खटकते नहीं। स्वप्न कथा के कारण रचनाकार को यह अवसर लिया जाता है कि वह नितान्त असंबद्ध एवं दूरदराज की वस्तुओं की वहां उपस्थित कर देता है। ‘अंधेरे में’ तिलक, गांधी, टॉलस्टाय इसी प्रकार एक साथ आते हैं। इसी तरह उन घटनाओं को की दिखाया जाता है। जो यथार्थ के धरातल पर संभव नहीं हो पातीं किन्तु पाठक या श्रोता को वे काल्पनिक या मिथ्याभास नहीं जान पड़ती जैसे-

एकाएक उठ पड़ा आत्मा का पिंजर
मूर्ति की ठठरी
नाके पर चश्मा, हाथ में डंडा
कंधे परबोरा, वाहे में बच्चा
आश्चर्य!! अद्भुत, यह शिशु कैसे ?
मुसलरा उस धृति पुरुष ने कहा तब-
‘मेरे पास चुपचाप सोया हुआ था
संभालना इसकों, सुरक्षित रखना’

फंतासी (फैन्टैसी) अपने समय और विकसित रूप में दिवा-स्वप्न बन जाती है यह दिवास्वप्न अधिक यथार्थ तथा अपेक्षाकृत अधिक व्यवस्थित होता है। ऐसा इसलिए होता है कि दिवा स्वप्न में व्यक्ति जागृत अवस्था में होता है। इसी कारण फंतासी में मन एकाग्र होता है।

भाषा फैण्टेंसी को काटती-छाँटती है और इसप्रक्रिया के विपरीत फैण्टेंसी भाषा को संपन्न और समृद्ध भी करती है। कवि की यह फैण्टेंसी भाषा के समृद्ध बना देती है।

भाषा परम्परा के रूप में, फैण्टेसी के मूल रंग को विस्तृत कर देती है। साथ ही फैण्टेसी अपने मूल रंगों के निर्वाह के लिए अपने मूल रंगों की अभिव्यक्ति के लिए भाषा पर दबाव लाती है। उसके शब्दों और मुहावरों में नयी, अर्थ क्षमता, नयी अभिव्यक्ति कर देती है। कथा के तीसरे क्षण में यह महत्त्वपूर्ण दृढ़ है। मुक्तिबोध भाषा, बिम्ब, प्रतीक आदि का सक्षम प्रयोग करते हुए अपने शब्द कौशल का प्रमाण देते हैं तो लम्बी नाट्यात्मक कविताओं द्वारा अपनी अनुभूति की व्यापकता तथा भाव-सामर्थ्य की पहचान कराते हैं। यथार्थ को उसकी संपूर्णता में रूपायित करने के लिए फैण्टेसी का प्रयोग है तथा उसे शिल्प का एक महत्त्वपूर्ण प्रतिमान बना देते हैं।

१. अंधेरे में!

मुक्तिबोध का काव्य नयी कविता की अन्यतम उपलब्धि है। गजानन माधव मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' उनके काव्य संकलन 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में संकलित है।

इस कविता का मूल कथ्य है अस्मिता की खोज, किंतु कुछ अन्य व्यक्तिवादी कवियों की तरह किसी प्रकार की आध्यत्मिकता या रहस्यवाद नहीं, बल्कि गली सड़क की गतिविधि, राजनीतिक परिस्थिति और अनेक मानव-चरित्रों की आत्मा के इतिहास का वास्तविक परिवेश है।

नाटक कौशल के लिए कविता का मैं, दो व्यक्ति चरित्रों में विभक्त कर दिया गया है: एक है काव्य-नायक मैं और दूसरा है उसका प्रतिरूप 'वह'। यह विभाजन वस्तुतः एक नाटकीय कौशल्य मात्र नहीं, बल्कि इसके आधार आत्मनिर्वासन (सेल्फ एलिएनेशन) है।

कविता का आरंभ इस तिलिस्त्री खोह के रहस्य दृश्य से होता है, जो अपने प्रभाव में काफ़ी नाटकीय है

जिन्दगी के . . .
समरों में अंधेरे
लगता है चक्कर
कोई एक लगाताए;

किन्तु यह रहस्यमय व्यक्ति दिखायी नहीं देता, केवल उसके चलने की आहट-कर सुनायी देती है। अकस्मात् भीत से फले हुए पलस्तर गिरते हैं और भीत पर खुद-ब-खुद कोई बड़ा चेहरा बन जाता है : नु कीली नाक, भव्य ललाट, दृढ़ हनु! प्रश्न उठता है: कौन मनु? और इस प्रश्न के साथ ही जैसे काव्य नाटक, प्रकट होता है उसे याद आता है कि रहस्यमय व्यक्ति वही है, आत्मनिवासित काव्य, नायक को पता है, कि वह रहस्यमय व्यक्ति अबतक न पायी गयी मेरी अभिव्यक्ति है" तथा 'हृदय में रिस रहे ज्ञान का तनाव वह आत्मा की प्रतिमा है।'

खोज और उपलब्धि के बीच की दुविधा या 'सस्पेंस' ही 'अंधेरे में' कविता को अद्भुत नाटकीयता प्रदान करती है, और केवल काव्य शैली का चमत्कार नहीं बल्कि कथ्य की गहरी अर्थवत्ता का सूचक है।

‘अंधेरे में’ कविता के अन्तर्गत स्वप्न-कथा के रूप में तीन घटनाएँ वर्णित हैं। किसी मृतदल की शोभा यात्रा, सैनिक शासन और जनकांति का सूत्रपात। स्पष्टतः पहली दोनों घटनाएँ कवि की दृष्टि में अस्मिता के खोने का वस्तुगत कारण उपस्थित करती हैं। किसी मृत-दल की शोभायात्रा और सैनिक शासन को आतंक से अस्मिता के खोने की बात एकदम स्पष्ट जाती है।

‘अंधेरे में’ कविता का प्रभाव जिस परिवेश के चित्रण पर अंधेरे की भूमिका। अंधेरे में वस्तुओं को मूर्तिमान करने की विशेष क्षमता इसलिए होती है कि आसपास की बहुत सी वस्तुएँ ओझल हो जाती हैं इसलिए अभीष्ट वस्तुएँ विशेष रूप से उद्भासित होती हैं, इसलिए अभीष्ट वस्तुएँ विशेष रूप से उद्भासित होती हैं। अंधेरे में रेखाओं की संख्या कम होती हैं, किन्तु उनके उभार की मात्रा अधिक होती हैं। मुक्तिबोध ने अंधकार को स्वप्न-व्यथा से सम्बद्ध करके एक और आयाम दे दिया है।

कथन शैली की दृष्टि से ‘अंधेरे में’ एक स्वप्न कथा है। स्वप्न-शैली के कारण एक ओर कथा अनिवार्यतः चित्रात्मक हो गयी तो दूसरी ओर एक से एक अधिक कथाओं के क्रमबद्ध संयोजन में भी लाघव आ गया, क्योंकि स्वप्न-क्रम प्रकृत्या अतार्किक और विपर्यासधर्मी होता है। स्वप्नशैली के साथ एक सुविधा यह भी है कि आवश्यकतानुसार देश और काल की दृष्टि से नितान्त असम्बद्ध तथा दूर की वस्तुओं को भी एकत्र रखा जा सकता है ‘अंधेरे में’ के अन्तर्गत तोल्सतॉय तिलक और गाँधी इसी जादू की छड़ी में बुला लिये गये हैं।

‘अंधेरे में’ सामान्य रचना-कथा नहीं, बल्कि दुःस्वप्न का कथालोक है, जिसमें हर चीज़ प्रायः कुछ विकृत, कुछ अन्यथा रूप में दृष्टिगत होती है, किन्तु काव्य नायक के मन पर परिस्थितियों का इतना गहरा दबाव है कि वह अतिरिक्त भयाकान्त है। उसने अपने बहुमूल्यभावों और विचारों को उपचेतन के तलघर में छिपा दिया है। उसके मन में हर सभय किसी न किसी दुर्घटना की आशंका है। हर समय उसके मन में यह खटकता लगा हुआ है। कि कोई उसका पीछा कर रहा है। वह प्रत्येक दुर्घटना का कारण अपने-आपको मानता है- ‘मानो मेरे कारण ही लग गया मार्शल-लॉ वह। मानो मेरे निष्क्रिय संज्ञा ने संकट बुलाया। मानो मेरे कारण ही दुर्घट हुई यह घटना’ ऐसी मनःस्थिति में दुःस्वप्नों का आना अस्वाभाविक नहीं। क्या वह मशाल जुलूस अवास्तविक है, जिसमें रात को वही पत्रकार, सर्व आलोचक, मंत्री, उद्योगपति आदि शहर के कुख्यात ‘हत्याओं के साथ’ होते हैं जो दिन में मिलकर षडयंत्र करते हैं? एक फासिस्ट खतरे का आभास देनेवाला यह जुलूस कैसे अवास्तविक कहा जा सकता है; जब कि दंगों में इससे की ज़्यादा भयावह अनुभव से हम गुजर चुके हैं? इसी प्रकार सैनिक प्रशासन भी यथार्थ से अधिक अतिरंजित नहीं। इस माहौल में “‘भागता मैं दम छोड़। घूम गया कोई मोड़’ की बैचैनी की काफी जानी-पहचानी अनुभूति है।

कविता का दूसरा पक्ष भी है जिसका संबंध अन्धकार के विरुद्ध लड़नेवाली शक्तियों से है। कुछ लोगों के लिए यह एक किंवदन्ती मात्र है और वे उस पर खामोश रहते हैं किन्तु काव्य नायक की दृष्टि में ‘यह कथा नहीं है, यह सब सच है। उल्लेखनीय है कि भयाकान्त काव्य-नायक के मस्तिष्क में दुःस्वप्नों के साथ जनक्रांति का स्वप्न आता है।’

‘अंधेरे में’ की संरचना की सबसे बड़ी विशेषता है परस्पर विरोधी भाव-चित्रों का धूप-छाँही मेल, जिसे आचार्य शुल्क “विरुद्धों का सामंजस्य” कहते थे। अन्धकार की गहरी पटभूमि पर एक आलोक रेखा खींचकर कालजयी काव्य-कृतित्व का जो प्रतिमान किसी समय निराला की “राम की शक्ति पूजा” ने उसी तरह की दूसरी काव्यकृति प्रस्तुत की। अंधेरे में के अन्तर्गत सर्वत्र अंधेरा ही नहीं है, बल्कि चमकती हुई रंग-बिरंगी मणियाँ की हैं; बंदूक और गोली ही नहीं फूलों के गुच्छे भी हैं, पिशाच-आकृति-पुरुष ही नहीं, सकर्मक सत्-चित् वेदना – भास्कर नये-नये सहचर भी हैं, भय ही नहीं मानव करुणा भी हैं, पीड़ा ही नहीं, आस्था भी है संपूर्ण कविता में अन्धकार के ऊपर अस्तित्व की एक अलौकिक सुगंध परिव्याप्त है।

रात्रि के श्यामल ओस से क्षालित
कोई गुरु गंभीर महान अस्तित्व
महकवा है लगातार
अँधेरे में पता नहीं चलता
मात्र सुगन्ध है सब ओर,
पर उस महक-लहर में
कोई छिपी वेदना, कोई मुक्त चिन्ता
छटपटा रही है, छटपटा रही है।

अस्तित्व की यह, सुगन्ध वस्तुतः मानवीयता है; कविता के अन्तर्गत मानवीय उपस्थिति ही सुगंध के रूप में व्यक्त है। इस उपस्थिति का कारण है कवि का परिप्रेक्ष्य – बोध।

कवि मुक्तिबोध के लिए अस्मिता की खोज व्यक्ति की खोज नहीं, बल्कि अभिव्यक्ति की खोज है। एक कवि के नाते उनके लिए परम अभिव्यक्ति ही अस्मिता है। भाषा स्वभावतः इस अभिव्यक्ति का आधार है दिमागी ‘स्क्रीनिंग’ के बाद रिहा होने पर व्याप्त नायक नये सिरे से जिन्दगी शुरू करने का संकल्प करता है। एक ओर साथियों की खोज और दूसरी ओर नये दायित्व के अनुरूप अभिव्यक्ति को सँजाने का प्रयास। वह जमीन पर पड़े चमकीले पत्थरों को चुनता है, लेकिन तुरन्त ही उसे उनपत्थरों की अपर्याप्तता का अनुभव होता है,

किन्तु असतोष मुझको है, गहरा,
शब्दा भि व्यक्ति – अभाव का संकेत
काव्य-चमत्कार उतना ही रंगीन
परंतु ठण्डा
मेरे भी फूल हैं तेजस्क्रिय, पर
अतिशय शीतल।

स्पष्ट है कि मुक्तिबोध के लिए भाषागत अभिव्यक्ति जीवन की अभिव्यक्ति से अभिन्नरूप में जुड़ी हुई है, अभिव्यक्ति के खतरे उठाने का मतलब है मठों और गढ़ों को तोड़ना, साथ ही ‘अरुण कमल’ के लिए दुर्गम पहाड़ी के पार जाने का जोखिम उठाना है। इस प्रक्रिया में मुक्तिबोध ने काव्य भाषा को नया तेवर दिया है जो नयी कविता की सामान्य काव्यभाषा की तुलना में काफ़ी अनगढ़ और बेडौल लगती है।

कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि 'अंधेरे में' जो रोमांटिक स्वप्न है, उसका आधार अपने युग में विकासमान उत्थान शील शक्तियों का बोध कविता के अन्तिम भाग में यही उत्थानशील शक्तियाँ कवि के लिए सन्नद दिखाती पड़ती है। इस स्वप्न का रंग उस दुः स्वप्न के कारण और भी निखर उठता है, जिसके मूल में हासोन्मुख शक्तियों के "मृत-दल की शोभा यात्रा है।"

संपूर्ण कविता का अर्थ (अंधेरे में)

१)

जिन्दगी के . . .

कमरो. . .

सुनारस जो देता है, पर नहीं देता दिखाई।

कवि कहता है कि मुझे ऐसा लगता है कि कोई लगातार चहलकदमी कर रहा है। उसके कदमों की पदचाप सुनई पड़ रही है, पर वह दिखाई नहीं दे रहा है, इन गहन रहस्यमयी अधंकारों से कोई अपने अस्तित्व का बोध करवाता है।

कविता का केन्द्र भाव (विशेष)

जिन्दगी का अंधेरा कमरा अवचेतन को माना है, रहस्यपूर्ण वातावरण की सृष्टि, दृश्यबिंब की योजना की गई है। अवचेतन में अनेक प्रकार की आकांक्षा सोई रहती है, जो अवसर पाकर जाग उठती है और प्रतीति कराती है किंतु व्यक्ति अनेक स्वरूप को देख नहीं पाता।

२)

अरे! अरे! . . .

कहरे में, सामनें, रक्तालोक-स्नात पुरुष एक, रहस्यसाक्षात!!

कवि कहता है कि नगर के बाहर स्थित तालाब से कोई आकृति अचानक उभरती है जो मुझे पहचानती है, पर मैं उसे नहीं पहचानता। अचानक ही वृक्षों के अंधेरे में छिपी हुई एक रहस्यमय तिलस्मी गुफा का पत्थर से ढका दरवाजा खुला पड़ता है और उसके भीतर छाप हुए गहन अन्धकार में एक लाल प्रज्वलित मशाल प्रवेश करती है। भीतरी परतों में छिपी हुई गुफा का अभिप्राय अन्तर्मन से है। इस अन्तर्मन में कांति की इच्छा व्याप्त है जिसे कवि ने लाल मशाल एवं रक्तालोक स्नातपुरुष के बिम्ब से उभारने का प्रयास किया है।

विशेष

लाल मशाल एवं रक्तालोक स्नातपुरुष दोनों ही प्रतीक कांति के माने जा सकते हैं। डालियो का टकराना दृढ़ का प्रतीक, तिलसी खोह – अन्तर्मन का प्रतीक है। मुक्तिबोध की कविताओं में कांति की कामना निहित थी इसका बोध इन पंक्तियों से होता है।

३)

वह रहस्य मय- व्यक्ति.

कि मुझको यो अन्धरे में पकड़कर मौत की सजा दी।

अंधकार की उस गहन गुफा में जो रक्तालोक स्नात पुरुष है, उसे कवि अपने उन विचारों का प्रतीक मानता है, जो अभी तक अभिव्यक्ति नहीं पा सके हैं। हृदय की अनुभूति जब शब्दों में व्यक्त नहीं हो पाती, तब वह तनाव ऐसा ही रूप धारण कर लेता है। कवि की आन्तरिक चेतना की मशाल को बाहरी दबावों की हवा ने बुझा दिया है।

विशेष

क्रान्तिदूत को सुख-सुविधाएँ त्यागनी पड़ती हैं जो इन सुख-सुविधाओं का मोह नहीं त्याग पाता उसके हृदय में जलनेवाली मशाल निश्चत बुझ जाती है।

रक्तालोक स्नात पुरुष व्यक्ति की घायल आत्मा का प्रतीक है।

४)

एकाएक टूट गया स्वप्न व छिन्न-छिन्न हो गए. . . .

इसकी मुझे और सजा मिलेगी

मुक्तिबोध समान्यजन के हितचिन्तक थे एवं शोषण के मुखर विरोधी थे। सामान्यजन का शोषण देखकर उसके मन में संघर्ष छिड़ जाता था उन्हें दिखाई पड़ता था स्वार्थी लोगों का वह घृणित कुत्सित चेहरा जो हर घर दफ्तर एवं कार्यालय में लोगों का शोषण करता है और निरीह मानवता कराहती रह जाती है।

विशेष

मुक्तिबोध के मन में गरीबों, शोषितों के प्रति सहानुभूति का भाव विद्यमान है। जीवन के घृणित एवं कालिमापूर्ण पक्ष को उजाकर करना भी कवि का दायित्व है। “नगर की मृतात्माएं” शब्द का प्रयोग स्वार्थी, शोषकों, षडयन्त्रकादियों के लिए किया गया है। मुक्त छंद, सहज, प्रवाहपूर्ण साहित्यिक हिन्दी का प्रयोग है।

५)

ओ मरे आदर्शवादी मन

मद गया देश, अरे जीवित रह गए तुम।।

कवि, की मान्यता है कि कुछ लोग सिद्धान्तवादी एवं आदर्शवादी तो होते हैं, किंतु जब उस सिद्धान्त को अमली जामा पहनाने का अवसर आता है, तब वे पीछे हट जाते हैं। अधिकतर लाग केवल अपनी उदरपूर्ति का साधन जुटाने में लगे रहते हैं, दूसरों के सुख दुःख से वे प्रभावित नहीं होते। कितने लोग ऐसे हैं जो दूसरों की दयनीय दशा को देखकर करुणा विगलित होते हैं? ऐसे अवसर आने पर वे अपनी संवेदन हीनता का परिचय देते हैं और पत्थर बन जाते हैं। व्यक्ति

की इसी स्वार्थ केन्द्रित प्रवृत्ति के कारण देश का सत्यानाश हो रहा है। इन सब बातों को वह अपने ऊपर चरितार्थ करता हुआ स्वयं को ऐसे ही सिद्धान्तवादी लोगों की कतार में गिनता है।

विशेष

स्वार्थ एवं आत्मकेन्द्रित वृत्ति को त्यागने का संदेश इन पक्तियों में दिया गया है।

६)

लो-हित-पिता को छद से निकाल दिया, . . .

मार गया देश, अरे, जीवित रह गए तुम!

स्वार्थ केन्द्रित आत्मवृत्ति ने तुम्हारी मानवता को नष्ट कर दिया। तुमने अपने हृदय रूपी घर से लोकहित रूपी पिता एवं करुणा रूपी माता को निर्वासित कर दिया। तुम कर्तव्य विमुख हो गए। बुद्धि विवेक से रहित, होकर वासना के कीचड़ में धंस गए। सभी आदर्शों को तुमने तिलांजली दे दी और इस प्रकार तुम जैसे लोगों ने देश को ही नष्ट कर दिया।

विशेष

वर्तमान सभ्यताने मनुष्य को स्वार्थी एवं आत्मकेन्द्रित बना दिया है, इसी तथ्य को यहाँ रेखांकित किया गया है।

७)

प्राकृत जल वह आवेग भरा है,

गीली है हलचल!!

कवि की धारणा है कि अन्तर्मन में अनेक भाव रत्न बिखरे पड़े हैं, जिनका सदुपयोग हमें करना है। आज जीवन को आपाधापी में हम उन रत्नों को भुला बैठे हैं। वह अपने हृदय में बिखरे अनुभव, वेदना, विवेक, विचार को जानोपयोगी बनाना चाहता है। भावना के स्तर पर हमारे पास बहुत कुछ बहुभूल्य सम्पत्ति है। उसकी मान्यता है कि इन मणि रत्नों को उपयोग करते हुए हमें समाज को उन्नत बनाना चाहिए।

विशेष

मुक्तिबोध ने इस अंश में यह बताने का प्रयास किया है कि हमें अपने मन के गहन अन्धकार में जगमगाते हुए भाव रत्नों का उपयोग मानव कल्याण, के लिए करना है। लाल रंग की मणियां कांति का प्रतीक है। सत्यान्वेषण के लिए प्रतिबद्ध व्यक्ति ही लोक कल्याणी कार्यों में प्रवृत्त होता है।

८)

वे कह रहे हैं. . . .

मैं अति उद्विग्न!

मुक्तिबोध को लगता है कि हमारे जीवन मूल्य एवं आदर्श बिखर गए हैं। पहले वे तिलक की मूर्ति के सामने खड़े हो कर सोचते हैं और उन्हें लगता है कि तिलक के विचार, आदर्श एवं सिद्धान्त अब रेत के ढेर में बदलते जा रहे हैं। तत्पश्चात् वे गांधी की प्रतिमा के सामने खड़े होकर कुछ सोचने लगते हैं। उन्हें लगता है कि गांधी जी भी वर्तमान स्थितियों को देखकर खिन्न हैं। वे कहते हैं कि भावी सभ्यता जनता के गुणों से ही निर्मित होगी।

विशेष

कवि को लगता है कि आज हमने महापुरुषों के विचारों एवं सिद्धान्तों की पूर्ण अवहेलना कर दी है। तिलक और गांधी के विचारों एवं आदर्शों का पालन करने वाले लोग आज नहीं रहे हैं, कवि को इस बात का दुःख है।

९)

इतने में पाता हूँ, अन्धेरे में सहसा

कन्धे क्यों वजन से दुःख रहे सहसा।।

गांधीजी ने अपनी प्रेरणाप्रद नेतृत्व क्षमता से स्वतन्त्रता रूपी शिशु को जन्म दिया और उस नवजात शिशु को वर्तमान पीढ़ी को सौंप दिया। लोगों की बड़ी आशाएँ थीं नवजात स्वतंत्रता शिशु से, किन्तु वह शिशु कुछ देर रोता रहा और फिर लुप्त हो गया। कवि निराश है, उसे लगता है कि स्वतंत्रता के लिए दिए गए बलिदान व्यर्थ हो गए और इसका लाभ आम जनता को नहीं मिल सका। स्वतंत्रता के बोझ को वर्तमान पीढ़ी के कन्धे उठा नहीं पाए। लोगों को अपने उत्तरदायित्व का अनुभव करने लगा। निराशा के इस अन्धकार में उसे कहीं एक ढिबरी (दीपक) थोड़ा-सा प्रकाश विकीर्ण करती दिखाई दे रही हैं। वह सुखद भविष्य के प्रति आशान्वित तो है, लेकिन मन अनेक आशंकाओं से भरा हुआ है।

१०)

अब अभिव्यक्ती के सारे खतरे

तारों की टपकती अच्छी न लगती।

गांधी जी के प्रयासों से स्वतन्त्रता तो मिल गई, किन्तु हमारे कन्धे इतने मजबूत नहीं कि हम स्वतन्त्रता के उस बोझ का वहन कर सकें। समाज के पुनर्निर्माण के लिए अब अभिव्यक्ति का खतरा उठाना पड़ेगा क्रांति का बिगुल फूंकना होगा। कान्त्रिधर्मों चेतना तो जाग्रत कर प्रतिक्रियावादी शक्तियों के विरुद्ध अभिव्यक्ति करनी होगी। तभी हम अपने उद्देश्य में सफल हो सकेंगे।

विशेष

क्रांति के मार्ग में खतरे लो हैं, किन्तु उन खतरों खतरों को झेलते हुए हमें आगे बढ़ना है। मढ़ों और गढ़ों को जिसने का तात्पर्य प्रतिक्रियावादी ताकतों को नष्ट करने से है।

११)

**शब चुप, साहित्यिक चुप और कविजन निर्वाक
कहीं आग बाई, कहीं गोली चले गई।**

परिवेश में व्याप्त विषमता ने सबको चुप कर दिया है, कोई भी इसका विरोध करने का साहस नहीं जुटा पा रहा। लोग नपुंसक की भांति अन्याय अत्याचार का चुपचाप वरदाश्त कर रहे हैं। बौद्धिक वर्ग व्यवस्था का गुलाम बनकर जी रहा है। कहीं आग लगी हो, किन्तु बुद्धिजीवी चुप रहता है। बुद्धिजीवी वर्ग अपना कर्तव्य भूल गया है। आवश्यकता है जनता का जागरूक करने की किन्तु जिनकी यह भूमिका है, वे पूंजीपतियों के गुलाम बने हुए हैं। आम जनता का हित करने वाला कोई दिख नहीं रहा इसलिए कवि का मन विक्षुब्ध है।



मुक्तिबोध की कविताओं में सामाजिक यथार्थ

(ब्रहमराक्षस, लकड़ी का बना रावण, मूल-गूलती एक भूतपूर्व विद्रोही का आत्मकथने) के विशेष संदर्भ ने

मुक्ति का मार्ग मात्र अपने परिवेश का निषेध नहीं है वरन उस परिवेश की वास्तविक स्थिति के ज्ञान से संभव हैं। मुक्तिबोध का सारा जीवन अभावों और असफलताओं में बीता था। इसलिये परिवेश का वास्तविक यथार्थ उनका भोगा हुआ यथार्थ था। कहीं से रटा-घोंटा नहीं। इसे उन्होंने अपनी व्यक्तियों में नजर अन्दाज नहीं किया। उनकी सार्थक चिन्ता सिर्फ यही नहीं थी कि समाज में व्याप्त गरीबी – अमीरी और ऊँच-नीच की खाई मिट जाय वरन उसकी चिन्ता तो यह थी कि मनुष्य की नियति के गहरें सवालों से रु-ब-रु हुआ जाय। मुक्तिबोध इसी सवाल से हमेशा लहू-लुहान होते रहे। “आत्मचेतस किन्तु इस व्यक्तित्व में भी प्राणमय अनबन विश्व चेतस् बेबनाव।”

यही मुक्तिबोध के समस्त काव्य-व्यक्तित्व का मरुदण्ड हैं। उनके काव्य की नियति मानव नियति से जुड़ी है। वे उससे पलायन नहीं करते बल्कि कटु और भयावह हालात का जमकर मुकाबला करते हैं:

मुक्तिबोध की कविताओं में ऐसे व्यक्ति की उपस्थिति आप हर स्थान पर देख सकते हैं जो क्रियाशील चिन्तन प्रक्रिया से गुजरता कठिनाइयों का सामना करता हुआ, उनसे जुझते हुए, उनका अतिक्रमण कर जाने की इच्छा लिए खड़ा है। इस व्यक्ति की भागीदारी केवल उसकी निजी भागीदारी नहीं वरन पत समाज की अनन्त संभावनों के लिए उस मोर्चे पर डंटा है, जोसपूर्ण मानवता की अनन्त संभावनों के बीच केन्द्रित है। इसी कारण मुक्तिबोध ने सम्पूर्णता की तलाश को आत्मसंभ्रम की तलाश कहा है।

वह ज्योति अनजानी सदा को सो गई,
यह क्यों हुआ,
क्यों यह हुआ,
मैं ब्रहम राक्षस का सजल उर शिष्य होना चाहता
जिससे कि उसका अधूरा कार्य
संगतपूर्ण, निष्कर्षों तक पहुँचा सकूँ

यहां यह बात स्पष्ट होती है कि मुक्तिबोध उस सोई हुई ज्योति को वापस लाने के पक्षधर थे। उसी को अपनी कविताओं में प्रवेश कराने के लिए प्रयत्नशील थे जो ब्रहम राक्षस से अलग पड़ गई थी। वह ब्रहम राक्षस तो किसी आदिम गुंफा में कैद था निःसंगतो में अकेलापन

झेलने की निर्यात से बंधा था। इस अकेलेपन में भी निष्क्रिय नहीं था। वरन मार्क्स, एंजेल्स, हीडेगगर, टॉयनवी, रसेल, गांधी, सार्त्र के विचारों के साथ-ही-साथ बेबीलौनी जन-कथाओं, मधुर वैदिक ऋचाओं का नया भाष्य करना चाहता था। ऐसे ब्रह्म राक्षस का 'सजल उर शिष्य' होकर उसकेद्वारा किए गए। कार्य को संगतपूर्ण परिणात्मक पहुँचाने की जिद यहाँ पल रही है।

'भूल-गलती' शीर्षक कविता में भी सामाजिक वैषम्य और तदजनित विकृतियों का चित्रण हुआ है। यह कविता जो दृश्य उपस्थित करती है उसमें समान्थ-जन-जीवन विस्तृत रूप में उभरकर आया है। लोग पंक्तिबद्ध हैं – स्थान है 'दरबारे आम' पर बेबस बेजुंबा उसी आम जन का प्रतीक बनकर आया है।

वह दरबार अनगिनत खंबों और मेहराबों पर टिका है चेहरा है पर बैचेन घावों की अजब तिरछी लकीरों से कटा हुआ दिल के तख्त पर 'जिरह-बख्तर' पहनकर 'भूल-गलती' बैठी है। उसके सन्मुख 'ईमान' कैदी बनाकर प्रस्तुत किया गया है। पर सिर्फ ईमान की वहा कैदी नहीं है, कैदी है 'आम जन' –

शाहनशाह के दरबार में
कैद कर लाया गया ईमान
सुल्तानी निगाहों में निगाहें डालता
बेखोफ नीली बिजलियों को फेंकता
खामोश
सब खामोश
वो आँखे सच्चाई की निकाले डालता
सब बस्तियाँ दिल की उजोड़ डालता
करता हमें वह घर
बेबुनियाद, बे सिर-पैर
हम सब कैद है उसके चमकते तामझाम में
शाही मुकाम में।

यहां सब चुप हैं। यह चुप्पी अलग-अलग अर्थों को व्यंजित भी करती हैं। शाहँशाह इसलिए चुप है कि वह निर्णय न ले सके न की स्थिति में है, क्यों कि वह एक जड़ता भरे परिवेश में जी रहा है, जिरह बख्तर, हथियार, पत्थर खंभे, महारावे खूंखार या आलीशान अवश्य हो सकती है। किंतु सचेतन तो नहीं हो सकती। पंक्तियों में खड़े लोग भी इसी जड़वा भी देन है। इसी कारण तो बेबस और बेबुजान होकर सलाम करते हैं।

मध्यवर्गीय चिन्तन को लेकर वे कभी मुगालते में नहीं रहें। उन्हें पता था कि विवेक को गुहावास दे दिया है, लोकहित के कार्यों के उसे वंचित कर दिया गया है। उन्हें इस तरह पथ से भटका दिया गया है कि वे अपने इस भटकन के बारे में कभी सोच भी नहीं सकते। मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी बड़ा जटिल होता है। वह सोचता है बाँग देता है किन्तु कर्म में अपने चिन्तन को परिणत नहीं करता। इसे 'अंधरे में' शीर्षक कविता में मुक्तिबोध ने स्पष्ट किया है। वहाँ लोगों द्वारा लिखे और बांटे जाने वाले पर्चे में उसे अपना ही विक्षोभ विचार, विवेक और संवेदनाएँ प्रतीत होती हैं पर व्यवहार के धरातल पर दोनों में काफी अन्तर भी है, लेकिन उसका मन वहाँ बदल

गया है और जनता की उपस्थिति को समाज समझने लगा है। इसी कविता में मध्यवर्ग को धिक्कारते हुए वे लिखते हैं —

स्वार्थों के टेरियर कुत्तों को पालदिया
 भावना के कर्तव्य ... त्याग दिए
 हृदय के मन्तव्य ... मार डाले
 बुद्धि का मात्र ही फोड़ दिया
 तर्कों के हाथ उखाड़ दिए
 जम गए जाम हर, फंस गए
 अपने ही कीचड़ में धस गए
 विवेक बंधार डाला स्वार्थों के तेल में
 आदर्श खा गए
 अबतक क्या किया
 जीवन क्या जिया
 ज्यादा लिया, और दिया बहुत कम
 मर गया देश, अरे जीवित रह गए तुम।

मुक्तिबोध समाज के बीच अपनी उपस्थिति चाहते थे जिससे समाज के साथ वे आत्मीय ढंग से जुड़ सकें। जुड़ाव की इस प्रक्रिया में अपनी मार्क्सवादी समझ के आधार पर उन्होंने समाज को शोषकों और शोषितों में बटा हुआ पाया। इस वर्ग-विभाजन से समाज का नैतिक पतन हुआ और मानवीय दुर्बलताओं ने इंसान को अपने आगोश में ले लिया। इस शोषण परक व्यवस्था के कई रूप उभरे हैं। सामन्ती पूंजीवादी तथा वर्तमान एव उपमोक्तवादी संस्कृति जो विज्ञापनों की वैशाखी के सहारे खड़ी है, इन सब की सच्ची समझ के आधारपर उन्होंने समाज को शोषकों और शोषितों में बटा हुआ पाया। इस वर्ग-विभाजन के समाज का नैतिक पतन हुआ और मानवीय दुर्बलताओं ने इंसान को अपने आगोश में ले लिया। इस शोषण परक व्यवस्था के कई रूप उभरे हैं। सामन्ती पूंजीवादी तथा वर्तमान उपभोक्तावादी संस्कृति जो विज्ञापनों की बैशाखी से सहारे खड़ी है, इन सब की सच्ची समझ मुक्तिबोध की थीं। वे भूतपूर्व विद्रोही का आत्मकथा 'शीर्षक' कविता में लिखते हैं।

रहस्य पुरुष छायाएं
 लिखती है
 इतिहास इस महल का
 अजीब संयुक्त परिवार है
 औरतें व नौकर
 और मेहनतकश
 अपने ही पक्ष को
 खुरदुरा वृक्ष धड़
 मानकद घिसते हैं, धिसते हैं
 अपनी घावी पर जबरदस्ती
 विषदन्ती भावों का सर्व-मुख
 विद्रोही भावों का नाग सुख

रक्त लुप्त होता है
 नाग जकड़ लेता है
 किन्तु वे रेखाएँ मस्तक पर
 स्वयं नाग होती है
 बहुएँ मुँडेरों से कूद अरे
 आत्महत्या करती हैं
 ऐसा मकान यदि ढह पड़ा
 हवेली गिर पड़ी
 महल धराशायी तो
 बुरा क्या हुआ ?

इस कविता में नक्काशीदार कलात्मक महल, मकान हवेली ढह जाती है। यह हवेली वही सामन्ती शोषण की मददगार है जिससे एक ऐतिहासिक परम्परा का संबंध है, शोषितों का अलग-अलग वर्ग है। परिवर्तन के शाश्वत क्रमानुसार उसकी एक एक ईंट अगर बिखर रही है तो आश्चर्य किस बात का ? दुख तो उन्हे होगा जो इस शोषण की प्रक्रिया को सनातन ऐतिहासिक रूपमें जीवित रखना चाहते हैं। शोषण की प्रक्रिया देखिए —

नक्षीदार कलात्मक कमरे भी ढह पड़े
 जहाँ एक जमाने में
 चूमे गए होंठ
 छाती जकड़ी गई आवेशलिंगन में
 पुरानी भीतों की बास मिलती हुई
 एक महल
 तुम्हारे चुम्बन
 और उस कहानी का अंगारी — अंग — स्पर्श
 गया मृत हुआ
 खूबसूरत कमरों में कई बार
 हमारी आँखों के सामने
 हमारे विद्रोह के बावजूद
 बलात्कार किए गए
 नक्षीदार कक्षों में
 भोले निर्व्याज नयनहिरनी से
 मासूम चेहरे
 निर्दोष तन-बदन
 दैत्यों की बाँहों के शिकंजे में
 इतने अधिक
 कि जकड़ ही जाने के
 सिकुड़ने हुए घेरे में
 वे तन-मन
 दबते पिघलते हुए एक भाव बन गए

मुक्तिबोध मनुष्य के त्रास और पीड़ाओं के चितेरे मात्र नहीं हैं वरन संभावनाओं और संगठन के प्रणेता भी हैं। इस कारण जिसे जन को वे यहाँ चित्रित कर रहे हैं उसमें प्रतिशोध का भाव भी है, और उसके प्राणों में युद्ध के नगाड़े बज रहे हैं बलात्कार, बलात्कार होता है, चाहे वह जनशक्ति से किया गया हो, धनशक्ति से किया गया हो या बन्दूक की नौक पर हुआ हो। वह कभी संभोग नहीं बन सका। कवि इस तथ्य से पूर्णतया परिचित रहा। इसी प्रकार भूल गलती शीर्षक कविता में सामन्ती संस्कृति का पूरा एक दृश्य उपस्थित है। यह दृश्य दरबार का है। यह दरबार खोखले ऐश्वर्य और ताम-ज्ञान से भरा – पूरा लेकिन पराजय और विनाश के सन्निकट पहुँच चुका है।

कोई सोचता उस वक्त
छा रहे हैं सल्तनत परघने साए स्याह
सुलतानी जिरहबख्तर बना है सिर्फ मिट्टी
वो रेत का सा ठेर शहंशाह
शाही धाक का अब सिर्फ सन्नाटा

यहाँ हथियार धारी बख्तर बन्द, ददियल, सिपहसालार संजीदा सभी सहमकर खड़े रह जाते हैं और वह सारे घेरों को तोड़ता हुआ निकल मागता है और हमारी हार का बदला चुकाने की तैयारी करता है इसमें प्रतिपक्षी संघर्षरत जनता एवं पतनशील समन्ती संस्कृति अब पूरे तामझाम और शोषण परक हथियारों के साथ वर्णित है। गलत शान-शौकत के सामने सच्चाई को अदम्य साहसी व्यक्तित्व के रूप में खड़ा किया गया है। यह एक क्रांतिकारी कदम है। यहाँ ईमान की संकल्प-शक्ति अपराजय बनी हुई है। सामन्ती और पुंजीवादी सत्ता अपने तमाम सुरक्षा – प्रबंधों के बावजूद अपने को असुरक्षित पाती है। उसके हृदय में एक अविनाशी की कचोट मारता रहता है। लकड़ी का रावण शीर्षक कविता में कवि लिखता हैं –

डरता हूँ
उसमें से कोई हाय
सहसा न चढ़ जाय
उतुंग शिखर की सर्वोच्च स्थिति पर
पत्थर व लोहे के रंग का यह कुहरा
बढ़ नजाय
छान जाय
मेरी इस अद्वितीय
सत्ता के शिखरों पर स्वर्णाभ
हमला न कर बैठे खतरनाक
कुहरे के जनतंत्री
वानर ये, नर ये

पुंजीवादी सत्ता ठोंग, फरेब, जालसाजी, छल-कपट का कवच धारण करके जीवित रहती है। किसी भी हालतमें सत्य को टाल देना उसके वर्गीय हित में होता है। मुक्तिबोध उसे रेशमी शब्द-संस्कृति का पोषक कहते हैं। उसके रक्त से दुर्गंध और घृणा उत्पन्न होती है। 'पुंजीवादी समाज के प्रति' एक कविता मुक्तिबोध ने अपनी काव्य यात्रा के आरंभ में लिखी थी,

जिसमे पूंजीवादियों के प्रति घोर नफरत और जुगुसाजनक भाव व्यक्त हुआ है। वहाँ भी कवि – मेरी – ज्वाल, जन की ज्वाल होकर एक अपनी उष्णता से धो डाले अविवेक की बात करता है।

‘एक भूतपूर्व विद्रोही का आत्मकथन’ कविता में कविखंड हृद में दबी तमाम धुक धुकियों के साथ काव्य नायक को जोड़ता है। अपने पीड़ा भार को उत्तरदायित्व भार मानकर चलने की बात करता है, और जमीन में गड़कर भी जीने की कोशिश करता है। वहीं जमीन में गड़ा हुआ सातवें आसमान की आवाज सुनता है और मानव के सुखद भविष्य से भर उठता है। इन्द्र का महल ढट पड़ा है। उस खण्डहर से रेतियों, गोतियों और फावड़ों के चलने की आवाज सुन रहा हैं। कई ढह साफ हो चुके हैं। उन पर अब प्राथमिक शालाएँ, खेल के मैदान बनाए जाएंगे। इन्द्र के इस ऐश्वर्यशाली एवं भोग-वैभव परम्परा से जुड़े महल का कहीं नामोनिशा तक शेष वही बचेगा –

आँखों के भीतर की आँखोने डूब-डूब
फैल गए हम लोग
आत्मविस्तार यह
बेकार नहीं जाएगा
जमीन में गड़ी हुई दहों की खाक से
शरीर की मिट्टी से धूल से
खिलेंगे गुलाबी फूल
सही हैं हम पहचाने नहीं जाएंगे
दुनिया में नाम कमाने के लिए
लगी कोई फूल नहीं खिलता
हृदयानुभव – राग अरुण
गुलाबी फूल, प्रकृति के गंध – कोष
काश, हम बन सकें।

यहाँ काव्य –नाटक का यह त्याग और बलिदान नव-निर्माण ले आनेवाला है। उसे बात की चिन्ता नहीं, कामना नहीं कि उसके नाम का प्रवाह हो उसे यश या किर्ती मिले। उसे खुशी और प्रसन्नता है क्योंकि उसके वक्षों पर अब बच्चे किलकेंगे, हँसेंगे। उसके बलिदान का इससे सार्थक उपयोग और क्या हो सकता है? इसी प्रकार का एक की एक संभावता एक उम्मीद भूल-गलती इसी प्रकार का एक शीर्षक कविता में भी देखी जा सकती है –

महसूस होता है कि वह बेनाम
बेमालूम दरों के इलाके में
(सच्चाई के सुनहले तेज अक्सों के धुधल के में)
मुहैया कर रहा लश्कर
हमारी हार का बदला चुकाने आएगा
संकल्प धर्मी चेतना का रक्त प्लावित स्वर
हमारे ही हृदय का गुप्त स्वर्णाक्षर
प्रकट होकर विकट हो जाएगा।

इस कविता में कविता दरबार के ठीक समानान्तर अंधेरी घाटियों, बेनाम, बेताब दरों को खड़ा कर रहा है उसे विश्वास है कि वह संकल्प धर्मी, हृदय का गुप्त स्वर्णाक्षर उसकी हार को बदला चुकाने अवश्य आएगा। वह अपनी लश्करी तैयारी के साथ जब आयेगा तो दरबार का ताम-झाम और सिपहसलाहरों का कहीं अता-पता भी नहीं चल सकेगा। उसे उस पर अखण्ड विश्वास इस कारण है कि शाहीदरबार में जब सभी चुप थे उस चुपी को तोड़नेका साहस उसी ने दिखाया था। उसका यह कार्य वाणी का बड़बोलपन नहीं है बस कर्म की आहुति है।

वह कैद कर लाया ईमान
सुलतानी निगाहों में निगाहें डालता
बेखौफ नीली बिजलियों को फेंकता
सब खामोश मनसबदार
शायद और खूफी
अलगजाली – फाजिल सिपहसालार सब सरदार है खामोश

जब शोषण से मुक्ति का मार्ग अज्ञात था तो काव्य नायकने मार्ग की तलाश की।
उसका फलभी उसे कटू ही मिला किन्तु इसका अफसोस उसे लेश मात्र नहीं है।

आत्म-चैतन्य के प्रकाश
मूत बन गए
भूत बाधा - ग्रस्त
कमरों की अंध – सांय – सांय
हमने बतायी तो
दण्ड हमी को मिला
बागी करार दिए गए
चाँटा हमी को पड़ा
बन्द तहखानों में ... कुओं में फेंके गए
हमी लोग क्योंकि हमे ज्ञान या ज्ञान अपराध बना

मुक्तिबोध आम जन के सुख:दुख, आशा-निराशा के सच्चे कवि थे। प्रत्येक व्यक्ति हीरे के समान जिसके अन्दर एक अधीर आत्मा है, प्रत्येक कवि में अदृश्य वेदना-भाव है। इसी से मुक्तिबोध सबके भीतर से गुजरना चाहते हैं, सबके हृदय के अन्दर तैरना चाहते हैं और खुद को औरों को दिए-गए फिरते हैं, इसी से जन चेतना का संवेदनात्मक ज्ञान संभव होगा और जनता के संघर्ष के विकास में एक महत्वपूर्ण योगदान संभव हो सकेगा।



कितनी नावों में कितनी बार - अज्ञेय
कुरुक्षेत्र - रामधारी सिंह दिनकर
नये इलाके में - अरुण कमल

- लेखक - डॉ. विष्णु सरवदे

कितनी नावों में कितनी बार

हिन्दी साहित्य में अज्ञेय का स्थान उंचा है। उनका जन्म डॉ. हिरानंद शास्त्री के घर ७ मार्च १९११ में हुआ। कवि अज्ञेय का पुरा नाम सचिदानंत वात्सयायन था। उनका जन्म कार्तारपुर नामक गांव में हुआ जो पंजाब के जालन्धर जिले में है। उनके पिता पुरातत्व विभाग में अधिकारी के रूप में कार्यरत थे इसी कारण अज्ञेय को बचपन से ही घुमने का मौका मिला और वे जीवन के अंतिम क्षण तक घुमक्कड ही रहे। उनका देहान्त ४ एप्रैल १९८७ में हुआ।

आरंभिक जीवन :

अज्ञेय का जन्म कसाया जि. देवरिया में हुआ। कसाय का संस्कृत नाक 'कुशीनगर' से जोड़ा जाता है। कुशीनगर बुद्ध के निर्वाण का स्थान है। कसाय में जन्म लेने के कारण अज्ञेय बौद्ध श्रमण की तरह ही वे कभी एक जगह टिक नहीं पायें। वे बचपनसे ही अपने पिता के साथ घुमते रहे। पिता पुरातत्व विभाग में होने के कारण उन्हें यायावरी करनी पड़ती थी वही विरासत अज्ञेय को मिली। वे नालन्दा, पाटना, श्रीनगर, लाहौर, लखनऊ, बड़ोदा, मद्रास, उटकमंड आदि जगहो पर हमेशा जाने का मौका मिला।

अज्ञेय की शिक्षा का प्रारंभ मौखिक परम्परा से हुआ। १९१५ से १९१९ तक श्रीनगर और जम्मू में संस्कृत के आचार्यों से रघुवंश, रामायण, हितोपदेश, फारशी मौलवि से शेख सदी और अमरिकी पदरी से अंग्रेजी की शिक्षा मिली। १९१९ में पिता के साथ नालंदा आए और १९२५ तक वही रहें। नालचदा में पिताजी ने ही उन्हें हिन्दी सिखाना शुरु किया पिता सहज और संस्कारी भाषा के पक्षधर थे। पिता जब नालंदा से पटना आए तो वही काशीप्रसाद जायसवाल, राखदास वन्धोपाध्याय के परिवार से संबंध आए। पटना से ही अज्ञेय के मन में अंग्रेजी विरोध के बीज अंकुरित हुए। रायबाहादुरची से हिन्दी, राखलदासजी बंगला की शिक्षा उन्हें प्राप्त हुई। घर से प्रारंभ कि गई शिक्षा के बाद १९२५ में पंजाब से हाईस्कूल, १९२७ में इंटर सायन्स मद्रास और १९२८ में बी.एस.सी. फारमन कालेज लाहौर से किया। सन १९२९ में अज्ञेय ने एम. ए. अंग्रेजी में प्रवेश लिया परंतु वे पढ़ाई कर नहीं पाये।

पढ़ाई पूरी कर न पाने का कारण था उनके क्रान्तिकारि जीवन का प्रारंभ सन १९२८ में ही अज्ञेय क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में आये थे। अपने छात्र जीवन को छोडकर वे क्रान्तिकारियों के साथ करने लगे तब उनकी पहचानत क्रान्तिकारी चद्रशेखर आजाद, सुखदेव, भगवतीचरण बोहरा आदि के हो गई। कुछ क्रान्तिकारी ने मिलकर भगतसिंह को छुडाने की योजना बनाई थी उसमें अज्ञेय एक थे। अज्ञेय सन १९३० में मुहमद बक्श के नाम से पकडे गए

तो बंदी बनकर करागार में रहने का सिलसिला काफी वर्षों तक रहा। सन १९२९ से लेकर १९३६ तक अज्ञेय क्रान्तिकारी जीवन जीये। इन्हीं दिनों 'चिंता' और 'शेखर एक जीवनी' की रचना हुई उसके पीछे उनका क्रान्तिकारी जीवन ही है।

१९३६ के बाद अज्ञेय के जीवन में बहुत सारा परिवर्तन आया। वे पत्रकारीता के क्षेत्र में आए तो आगरा के 'सैनिक' में संपादक मंडल में रहे। कलकत्ता में आकर (१९३७) 'विशाल भारत' में ढेड़ वर्षों तक जुड़े रहे। उसके बाद सन १९३९ में रेडीओं में नौकरी करने लगे। सन १९३४ से १९४६ तक अज्ञेय सैन्य में रहे। वहाँ पर भी उनका मन नहीं लगा फर से वे पत्रकारीता में आए और प्रतीक के प्रकाशन से जुड़ गये। अज्ञेय बहुतदिनों तक एक जगह टिक नहीं पाए वे जीवन भर यायावरी करते रहे। सन १९५५ में युनेस्को के निमंत्रण पर पश्चिम युरोप की यात्रा पर गये वहाँ के लेखकों चिंतकों से मिले। उसके बाद जपान और फिलीपिन गये जपान में ही उनपर जापानी कविता का प्रभाव पड़ा। सन १९६१ में अज्ञेय कलिफोर्निया विश्वविद्यालय में भारतीय संस्कृति एवं साहित्य पढ़ने के लिए प्राध्यापक के रूप में नियुक्त हुए। अज्ञेय ने अपने जीवन में अमेरिका, रूस, यूगोस्लाविया एवं मंगोलिया कि यात्रा की।

वैवाहिक जीवन :

अज्ञेय ने संतोष जी से विवाह किया जो बलराज साहनी कि मित्र थी। परंतु उनका यह विवाह टिक नहीं पाया उनको इस विवाह में तलाक लेना अनिवार्य हुआ। तलाक के बाद आज्ञेय ने चौदाह वर्ष बाद अपने माता पिता के विरोध के बाद अपनी प्रेमिका कपिला मलिक से विवाह किया। यह विवाह भी टिक नहीं पाया। जीवन के तेरह साल साथ रहने के बाद दोनों अलग हो गये। कपिला से अलग होने के बाद अज्ञेय उनसे चालिस साल छोटे इला डालमिया के साथ रहे इस संबंध को लेकर वे सहज गरिमा के साथ रहे। इलाजी भी इस संबंध को लेकर खुले मन से अज्ञेय के साथ रही।

व्यक्तित्व :

हिन्दी साहित्य में प्रसाद के बाद अज्ञेय ही ऐसे कवि है जो बहुमुखी साहित्यकार के रूप में पहचाने जाते हैं। अज्ञेय की रुचियाँ अनगिनत थी वे कपड़े सिते, जिल्द बांधते, पंखे, साईकल, मोटार आदि यंत्रोंकी मरम्मत करना जानते थे। विलायती ढंग के बाल काटते, मिट्टी के खिलौने, काठ के ठप्पे बना लेते थे। अज्ञेय स्वयः स्विकार करते हैं कि: "खासकर उन बातों में जिससे तत्काल कोई वस्तु न हो। जैसे चित्रकला, मूर्तिकला, फोटोग्राफी, मनोविश्लेषण और डाक्टरी का खब्त या फिर नदी-नालों और पहाड़ी झीलों के आसपास भटकने का।" अज्ञेय को बचपन से यायावरी पसंद थी वे अपने आपको जन्म जात यायावर मानते थे। उनमें आत्म-विश्लेषण की प्रवृत्ति भी थी। उनके व्यक्तित्व की महत्त्वपूर्ण विशेषता थी। अज्ञेय पर हुई आलोचना के हमेशा तर्क संगत उत्तर दिये कभी भी असंयमित भाषा में उत्तर नहीं दिया। वे आलोचना-प्रत्यालोचना के दौरान कभी भी व्यक्तिगत मुद्दों पर नहीं उतरे। उनका संपूर्ण जीवन शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है। उन्होंने जीवन के शाश्वत सत्य को साहित्य के माध्यम से चित्रित किया है। उन्हें जब युगोस्लाविया में स्वरमाला पुरस्कार मिला था तब अपने मित्र का लिखा था-

लेकिन फिर आऊगा मैं भी
लिये झोली में अग्नि बीज
कवि गाता है, गाता है वह अनघ
सनातनजयी।

अज्ञेय का कृतित्व :

अज्ञेय ने साहित्य के क्षेत्र में कहानी, उपन्यास, निबंध, कविता, गीति नाट्य, संपादन किया है। इस लिए वे बहुमुकी साहित्यकार माने जाते हैं।

कहानी संग्रह : विपथगा, परम्परा, कोठरीकी बात, शरनार्थी, जयदिल, यह तेरे रूप प्रतिरूप,

उपन्यास : शेखर एक जीवनी- भाग १ एवं भाग २, नदी के द्वीप, अपने अपने अजनबी।

कविता : भग्नदूत, चिन्ता, इत्यलम्, हरी घास पर क्षण भर, इन्द्रधनु रींदे हुए ये, अरी ओ कुणा प्रभामय, आँगने पार द्वार, कितनी नावों में कितनी बार, क्योंकि मैं उसे जानता हूँ, सागर मुद्रा, पहले मैं सन्नटा बुनता हूँ, महावृक्ष के निचे, नदी की बाँक पर छाया।

यात्रा वृत्त : अरे यायावर रहेगा याद, एक बूँद सहसा उछला,

निबंध : त्रिशंकु, सबरंग, आत्मनेपद, हिन्दी साहित्य: एक आधुनिक परिदृश्य, अलवाल, लिखि कागद कोरे, अद्यातन, जोग लिखी, संवत्सर, स्त्रोर और सेतु, व्यक्ति आणि व्यवस्था, अपरोक्ष, युग संधियों पर, धारा और किनारे, स्मृति रेखा, कहा है द्वारका, छाया और जंगला।

संपदित ग्रंथ : आधुनिक हिन्दी साहित्य, तार सप्तक, दूसरा सप्तक, तीसरा सप्तक, चौथा सप्तक, पुष्करिणी, नये एकांकी, रुपाबरा एवं होमवती स्मारक ग्रन्थ।

गीति नाट्य : उत्तर प्रयदर्शी।

इसके अलावा अज्ञेय जी के साहित्य का प्रतिनिधी रचना संग्रह नाम से साहित्य प्रकाशीत हो चुका है।



अज्ञेय के काव्य में प्रकृति चित्रण

संस्कृत साहित्य में कालिदास, बाणभट्ट, भवभूति आदि कवियों के काव्य में जिस प्रकार उच्च कोटी का चित्रण मिलता है। उतना उत्कृष्ट वर्णन किसी भी भारतीय साहित्य में नहीं मिलता। मध्यकाल में सूर, तुलसी के साहित्य में भी संस्कृत साहित्य जैसा प्रकृति-चित्रण नहीं मिलता। नयी कविता में अज्ञेय के काव्यमें प्रकृति चित्रण मिलता है या यह कह सकते हैं अज्ञेय ने नयी कविता में प्रकृति चित्रण नवीनता और ताजगी के रूप में प्रस्तुत किया। उनका कहना है कि: 'मानवेत्तर ही प्रकृति है वह सम्पूर्ण परिवेश, जिसमें मानव रहता है, जीता है, भोगता है और संस्कार ग्रहण करता है। स्थूल दृष्टि से देखने पर प्रकृति मानवेत्तर का वह अंश हो जाती है, जो कि इन्द्रियगोचर है, जिसे हम देख, सुन, छू सकते हैं और जिसका आस्वादन कर सकते हैं। अज्ञेय ने अपने काव्य में प्रकृति के अनेक रूपों का चित्रण किया है। उनके काव्यमें जंगल, पर्वत, नदी, सागर, खेत-खलिहान, झील, सरोवर, तट, पगडडी आदि काव्य में चित्रित है। उसके साथ ही प्रकृति के अन्य उत्पादनों का चित्रण भी मिलता है। आकाश, सूर्य, चाँद, तारे, बादल, इंद्रधनु, मोर साँझ, सुबह, दोपहर, रात आदि का उनके काव्य में अंकित है। प्रकृति में खिलते गुलाब, रंजनीगंधा, कचनार, मालती, टेसु, लाल बसंत, नीहार, नहाई, चटकी, चम्पे, जूही, तरु आदि फूलों का वर्णन भी अज्ञेय के काव्य में मिलता है। पीपल, बबूल, नरसाल, झाऊ, चीड़, किर्रीट, तरु आदि वृक्षों का चित्रण भी आया है। कौवा, बुलबुल, चिड़ियाँ, श्यामा, हंस, बगुला, टिटहरी, चातक आदि तो पशुओं में गधा, कुत्ता, डागर, बैल, मृग आदि का चित्रण अज्ञेय के काव्य में मिलता है।'

अज्ञेय ने अपने काव्य में प्रकृति के सभी रूपों क्रिया-व्यापारों का वर्णन अज्ञेय ने अपने काव्य में विस्तार से किया है।

२) ऐन्द्रिय बोध :

अज्ञेय ने जिन-जिन कविताओं में प्रकृति का वर्णन किया है उनमें ऐन्द्रिय बोध प्रकट होता है। प्रकृति के चित्रण में कवि रूप, गंध, ध्वनि, स्पर्श आदि बोध अकन किया है। उदा.-

लाल
अंगारे से उह उह इस
पंचमुख गुड़हल के फूल को
बाँधते रहो नीरव।

अज्ञेय ने अपने इस कविता में गुड़हल कुसुम का दहकते हुए अंगारों के समान लाल रंग का सटिक वर्णन किया है दहकते अंगारे व्यक्ति का ध्यान आकर्षित करते हैं, उसी प्रकार गुड़हल के पुष्प व्यक्ति का ध्यान आकर्षित करते हैं।

शरद की साँझ के सुने गगन की पीठिका पर
दोलती कलगी अकेली
बाजरे की।

इस उदा. से स्पष्ट होता है कि अज्ञेय के कविता में प्रकृति के स्थलों का चित्रण दृश्यात्मक बिंबों से युक्त मिलता है। कवि ने प्रकृति के रंग, रूप ध्वनि, गंध आदि को प्रस्तुत करने सफलता प्राप्त की है।

३) प्रकृति का उद्दीपन रूप :

अज्ञेय के कविता में प्रकृति के उद्दीपन का चित्रण आकर्षक रूप में हुआ है। उन्हें प्रकृति के उद्दीपन रूप ने आकर्षित किया है। उनके सागर के किनारे, वसंत गीत, सावन-मेघ, चाँदनी इन कविताओं में प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण मिलता है। उदा.

पूर्णमा की चाँदनी
सोने नहीं देती
चैतन्य अन्तर्मुखी स्मृतिलीन होती है
देह पर भी सजग है
खोने नहीं देती।

इस कविता में अज्ञेय के देह को पूर्णमा की चाँदनी देह-भूख और स्मृति में लीन होने के लिये आकर्षित करती है। ऐसा चित्रित किया है। तो प्रकृति उद्दीपन रूप का एक आकर्षित उदा.

खड़ खड़ कर उठे पात
फड़क उठे गाल
देखने को आँखें
घरने को बाहें
पुरानी कहानी ?
ओठ को ओठ वक्ष को वक्ष
ओ पिया पानी !

प्रस्तुत कविता में नायिका शरीर मिलन का न होने के कारण जीर्ण होती जा रही है। मिलन की इच्छा उसके शरीर को पत्तों के समान कप कपा जाता है।

४) प्रकृति परिवेश, अलंकरण एवं उपदेशन का चित्रण :

अज्ञेय के कविता में नगरीय परिवेश का अधिक चित्रण मिलता है। उन्होंने प्रकृति का उपयोग परिवेश-चित्रण, अलंकरण के लिये भी किया है। कमी परिवेश का चित्रण अज्ञेय निष्कर्ष निकालने लिये भी करते हैं। उदा.-

वहाँ एक चट्टान है।
सागर उमड़कर उससे टकराता है,
पछाड़ खाता है,
लौट जाता है।
फिर नया ज्वार भरता है।
और फिर से टकराने के लिए चल पड़ता है।

तो अलंकार निरूपण में प्रकृति के उपमान का प्रयोग करते हैं। अज्ञेय को हमेशा प्रकृति रूप उपदेश भी दिया करते हैं उदा.-

कहा सागर ने : चुप रहो
मैं अपनी अबाधता जैसे
सहता हूँ, अपनी मर्यादा
तुम सहो
जिसे बाँध तुम नहीं सकते
उसमें अखिन मन
बहो
मौन भी अभिव्यंजन है।
जितना तुम्हारा सच है
उतना ही कहो।

प्रकृति का मानवीकरण अर्थात् प्रकृति में चेतन सत्ता का आरोप अलंकारण की परीधि में आता है जिसकी परंपरा पाश्चात्य ही नहीं भारतीय काव्य की विशेषता रही है। छायावादी कवियों ने इस के बारे में अलग अलग कल्पनायें की थी। मानवीकरण को अज्ञेय 'व्यक्तिकरण' मानते हैं। इसीलिये उन्होंने प्राकृतिक वर्णन को प्राकृतिक अभिप्रयासो से अलग कर काव्योचित रूप दे दिया है।

कवि पूनम की साँझ का गतियुक्त एवं रंगीन चित्र प्रस्तुत करता है जिसमें उसकी कल्पना शक्ति की मौलिकता दिखाई देती है, कवि कहता है-

पति सेवा रत साँझ
उचकता देख पराया चाँद
ललाकर ओट हो नई. . . .

इस कविता में पति सेवा रत साँझ को उचककर देखने वाले व्यभिचारी चाँद का रूप क्रौंधता है तो साथ ही ललाकर ओट होने वाली रात अपने अस्त होने की सूचना देती है और शर्म से लाल होने वाली पतिव्रता नारी के रूप को साकार करती है।

भोर की पहली किरणें क्षीतिज से उलझकर ओस बूँदों को ताकती है। भोर का 'बावरा अहेरी' सूर्य आलोक की लाल कनियाँ बिछाता है। जब जाल को खींचता है तो सभी को साथ बाँध लेता है। तो कही सूर्य कूर बनकर 'धूप कनक' को बीनता है। शरद की पूर्णिमा में चाँद का

मानवीकरण है। चाँदणी के काण एक चीड़ का खाका आकाश पर उभरता है। साँझ सचेतन प्राणी की भाँती चुपचाप कवि के कमरे में प्रवेश करती है। तो कभी पैतने से धीरे धीरे धूप खिसक भी जाती है।

५) प्रकृति के प्रतीक :

अज्ञेय के काव्य की प्रमुख विशेषता है उनका प्रयोगवादी प्रतीक विधान है। प्रकृति के प्रतीकों का अज्ञेय ने बहुलता से प्रयोग किया है। अज्ञेय ने प्रकृति के सभी स्तरों का वर्णन किया है। उदात्त और अनुदात्त सभी प्रकार की भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए इन्हें अपनाया है। प्रकृति से लिए गए प्रतीक वैयक्तिक एवं सामाजिक दोनों संदर्भों में लिए हैं। अज्ञेय के प्रकृति प्रतीकों में यौन प्रतीक भी है। अज्ञेय के काव्य में प्रकृति चित्रण निजी भावनाओं और अनुभूतियों से युक्त है इसी लिए वह सजीव लगते हैं। प्रकृति के चित्रण में कवि कहीं कहीं छायावादी कवियों के समीप पहुँच जाते हैं। परंतु अलंकार ग्रहण में वे एकदम अलग हो जाते हैं। अज्ञेय ने प्रकृति के अछूते अंशों को भी छुआ है। इसी लिए उनके द्वारा लिए गये प्रतीक नवीन हैं। प्रकृति से अज्ञेय का रागात्मक संबंध रहा है जो उनके काव्य की श्रेष्ठ उपलब्धि है। प्रकृति प्रेम उनमें नैसर्गिक है। खेतों-खलियानों में उनका मन रमता है। जो सामान्य पाठकों के लिए असाधारण होता है।

६) प्रणय बोध :

अज्ञेय 'तार सप्तक' में नई राहों का अन्वेषण का दावा करके भी छायावादी रुमानियत से मुक्त नहीं हो पाए। प्रणय प्रसंगों में किशोर भावुकता, वायवीयता, सूक्ष्मता तथा अपार्थिवता आदि विशेषता इन्हें छायावादी कवियोंसे जोड़ती है। किन्तु इनके प्रणय निवेदन में विवेकशिलता, बौद्धिकता, नैसर्गिकता, भावों की अनियंत्रित अभिव्यजना, प्रेम की मांसलता इत्यादि प्रवृत्तियाँ इन्हें छायावादी कवियोंसे अलगती हैं। इतनाही नहीं यह अलगता उन्हें रुमानियता से अलग करती है।

अज्ञेय की प्रारंभिक रचनाओं में 'भग्नदूत', 'चिंता', 'इत्यालम्', में प्रणय का अत्यंत भावुक व अतिरिक्त रूप प्रकट हुआ है। 'भग्नदूत' की कविताओं का प्रधान स्वर भावप्रणव है: 'दृष्टिपथ से तुम जाते हो जब', 'असीम प्रणय की तृष्णा', 'कहो कैसे मन को समझा लूँ' आदि कविता में विगत प्रेम का और प्रिया का उच्छ्वासपूर्ण चित्रण है। प्रिया के प्रति अतिरेक भाव व्यक्त हुआ है। वियोग एवं विरह को वेदना को प्रणय के अनिवार्य अंगों के रूप में स्वीकार किया है। प्रेम कवि के लिए अग्नि की ज्वाला है। अतीत की पुकार में कवि कहता है:-

‘प्राण युग चली गई अत्यंत
कारुणिक मिथ्या है यह मोह
देखकर वे दो उड़ते वह कीर
कर उठा अंतस्थल विद्रोह’

विरह अनुभूति के चित्रण के साथ साथ कवि ने प्रेम में छले जाने की अनुभूति का भी चित्रण किया है। 'आज थका हिय हारिल मेरा' कविता में कवि याचना करता है:-

‘पर प्रिय अंत समय में क्या तुम
इतना मुझे दिलासा दोगे
जिसे सुने में मैं लुट चला
कही उसी में तुम ही होगे’

अज्ञेय ने अपनी कविता में नारी के नख शिख का वर्णन भी किया है-

मुझको नक चम्पे की कली है।
दूर ही से
स्मरण में भी गंध देती है।
तुम्हारे नैन।
पहले भोर की दो ओस बूँदें है
अछूती, ज्योतिर्मय भीतर द्रवित।

अज्ञेय ने नारी के रूप को स्पर्शातीत, अछूती, ज्योतिर्मय कहना, उसकी आँखों को दो ओस बूँदें कहना वास्तव में मूल्यों की स्वीकृति देते हैं। इसी प्रकार अमेय ने अपनी अनेक कविताओं में प्रणय बोध का वर्णन किया है।

अज्ञेय की कविता में सामाजिकता, मानव कल्याण, संस्कृति बोध आदि का भी वर्णन मिलता है।



अज्ञेय के काव्य में रहस्यानुभूति

अज्ञेय के प्रारंभिक कविताओं में रहस्यानुभूति का चित्रण मिलता है। भग्नदूत की 'असीम प्रणय की तृष्णा' में स्पष्ट रूप में दिखई देता है। वैसे भी रहस्यवाद रहस्य बना हुआ है। उस समझने में व्यक्ति उलझन में उलझ जाता है। सहपर्जियन ने इसे "रहस्यवाद एक दार्शनिक सिद्धान्त न होकर एक स्थिति विशेष या मनो दशा माना है।" हिन्दी साहित्य के विद्वान शुक्ल जी इसे जो भक्ति के क्षेत्र में अद्वैतवाद है, वही काव्य के क्षेत्र में रहस्यवाद मानते हैं। अज्ञेय का काव्य आधुनिकता से संबंधित है और साथ ही उसमें आध्यात्मिक भाव बोध भी होता है। अज्ञेय रहस्यवादी है भी और नहीं भी। वे ईश्वर के रूप में विश्वास न भी करते –

'इस विकास गति के आगे है कोई दुर्दम शक्ति कही
जो जग की स्रष्टा है, मुझको तो ऐसा विश्वास नहीं।'

अज्ञेय के रहस्यवाद कि विशेषताएँ-

१) आत्मवाद :

अज्ञेय का रहस्यवाद, आत्मवादी रहस्यवाद है। यह रहस्यवाद किसी देवी शक्ति की खोज न करके आत्मरूप की खोज करता है।

मैं भी एक प्रवाह में हूँ
लेकिन मेरा रहस्यवाद ईश्वर की ओर उन्मुख नहीं हैं।
मैं उस असीम शक्ति से
सम्बन्ध जोड़ना चाहता हूँ
अभिभूत होना चाहता हूँ
जो मेरे भीतर है।

कवि इस उदा. से ऐसे लगता है कि वे अपने भीतर की शक्ति से संबंध जोड़ना चाहता है। उसी में अभिभूत होना चाहते हैं। वे मानते हैं कि मैं शक्ति का एक अणु हूँ और शक्ति असीम है। इसी कारण उनका 'मैं' असीम है। इस रहस्यमयता का पर्दा खोलना ही अज्ञेय का रहस्यवाद है।

२) आत्मविश्लेषण की प्रवृत्ति :

अज्ञेय का रहस्यवाद आत्मोन्मुखी है। इसी कारण वे आत्मविश्लेषण की ओर प्रेरित हो गए हैं। इस तरफ प्रेरित होने का कारण पराजय की अनुभूति है। आधुनिक युग में व्यक्ति हर पग पर पराजय का अनुभव करता है। ओर अपने पराजय में हमेशा मग्न हो जाता है। एक स्थान

पर वे कहते हैं: “वह एक ऐस धनु है जिसे साधना में प्रत्यंचा टूट गई है। किन्तु साथ ही वह यह भी जानना चाहता है कि यह टूट जान ही हार जान है।”

३) मौन :

सभी रहस्यवादी साधकों ने मौन की गरिमा को स्वीकार किया है। विद्वानों का मानना है कि रहस्यवादी का ‘बाहरी मौन’ उसकी भीतरी क्रियाशीलता का द्योतक होता है। अज्ञेय ने अपने काव्य में मौन को महत्त्व दिया है। मौन के द्वारा व्यंजन के पुराने साधनों के मृत चमत्कारों की चर्चा में वह आज के कवि के लिए वर्तमान भाषा-संक्रांति को अभिव्यक्ति की समस्या को उठाते हैं। वे कहते हैं: “व्यंजन के नए माध्यम की खोज में अंगर कवि पाता है कि उसे जो कहना है, वह मौन ही में कहा जा सकता है कि उसे जो कहना है, वह मौन ही में कहा जा सकता है तो क्या वह बिल्कुल भूला है? क्या इसमें वह संत मनीषियों के साथ नहीं है- क्या स्वयं प्रकृति के साथ नहीं है? नाद अगर आकाश का शून्य का गुण है, तो उसकी संपूर्णता मुक्त अभिव्यक्ति का क्षेत्र और कौन हो सकता है, सिवा नीरवता के”

अज्ञेय ने १९६५ में अमरीका के एक विश्वाविद्यालय से छपे ‘हिन्दी की आधुनिक कविता’ इस संकलन में कहते हैं “भारतीय कवि के लिए ‘मौन’ अभिव्यक्ति का प्रभावकारी साधन है।” ‘बावरा अहेरी’ इस संग्रह में ‘आज तुम मुझे शब्द न दो’ तथा ‘जो कहा नहीं गया’ कविता में कविताओं में कवि के ‘अनभिव्यक्त कथ्य’ को कहने का संकल्प है। अज्ञेय के बावरा अहेरी संग्रह में ‘आज तुम शब्द न दो’ तथा ‘जो कहा नहीं गया’ कविताओं में कवि ने अनभिज्ञ कथ्य को कहने का संकल्प है। कवि मानता है कि सत्य की खोज में शब्द बाधा बन जाते हैं क्योंकि शब्द अनेक अर्थ देते हैं। ‘आँगन के पार द्वार’, ‘असाध्य वीणा’ आदि काव्य संग्रहों में कवि मौन अभिव्यक्ति को प्रस्तुत करता है।

४) व्यक्तिनिष्ठता :

अज्ञेय के काव्य की विशेषता या उसे अलगता भी कह सकते हैं या उसे व्यक्तिनिष्ठता भी कह सकते हैं। यही विशेषता उन्हें रहस्यवादी कवियों से अलग करती है। ‘तू’ और ‘तेरा’ से ‘मैं’ का अभिन्न अर्पण करते हुए भी उनके आत्मनिवेक्षण की प्रवृत्ति, उनके व्यक्तित्व की खोज और निजता की सुरक्षा उन्हें अन्य रहस्यवादी कवियों से अलग रखती है। ‘हरी घास पर क्षण भर’ संग्रह में ‘कितनी शांति कितनी शांति’ ‘दीप थे अगणित’, ‘प्रणति’ ‘नदी के द्वीप’ कविता में उनकी व्यक्तिनिष्ठता स्पष्ट रूप में दिखाई देती है।

५. समर्पण :

आँगन के द्वार तक पहुँचते पहुँचते अज्ञेय समर्पण तक पहुँच गये थे। उन्होंने अपने व्यक्तित्व को भी संपूर्ण रूप में बदलने का प्रयास किया था। वह समर्पण को अपने अंदर अखंड जीवन के आवाहन का मार्ग मानते हैं। ‘भीतर जागा दाता’ कविता में अनेक दृश्य : सागर, हरियाली, आकाश, प्यार का उमड़ा ज्वार कवि की अनुभूति में जगते हैं। इनके साथ वे अभिन्न होकर कवि अपने आपको ‘परिपूर्ण’ अनुभव करता है और कुछ दे सकने में समर्थ भी। उसके भी दाता जागता है और वह इन सभी को उस विराट सत्ता के सम्मुख समर्पित कर देता है: मेरे

भीतर जाग / दाता: / बोला: / लो यह सागर मैने तुम्हें दिया / मै डूबा नहीं, उमड़ा उतराया /
फिर भीतर दाता खिल आया / हँसा, हँसकर तुम्हें बुलाया ? लो. यह स्मृति, यह श्रद्धा, यह हँसी
/ यह आहुत स्पर्श पुत भाव / यह मैं, यह तुम, यह खिलना/यह ज्वार, यह प्लवन, यह प्यार /
यह अडूब उमड़ना / सब तुम्हें दिया /सब/तुम्हें/दिया/

अज्ञेय के 'झील का किनारा', 'आँगन के पार द्वार', 'कितनी नावों में कितनी' बार इस संग्रह में भी समर्पण का भाव विद्यमान है। 'संध्या संकल्प' तथा 'सुनी है साँसे' जैसी कविता में कवि का 'दिये जाने' का भाव मीरा महादेवी अथवा टागोर के आत्मसमर्पण जैसा है। कवि दम्भ को एक अमोघ, अनिवार्य, धर्म के रूप में स्वीकारता है। कवि अपने 'राग सत्य' को जो उसका अर्जित है वह 'दे' देने का 'सहज', स्वतः प्रेरित 'संकल्प' करता है। तथापि अज्ञेय का समर्पण छायावादी रहस्य लगती है। इस प्रकार अनेक कविताओं में अज्ञेय ने समर्पण के भाव को चित्रित किया है। यदी रहस्यवादियों के 'आत्मसमर्पण' से भिन्न हो जाता है। जब उसमें आधुनिक मानव की 'असहायता' झलकती है।

६. क्षण का दर्शन :

अज्ञेय के रहस्यवाद की दूसरी विशेषता है 'क्षण' के दर्शन की अभिव्यक्ति। कवि की परिपक्व दृष्टि ने रहस्यवाद के 'क्षण' के महत्त्व को स्वीकारा है। परंतु 'क्षण' उनके लिए उनके लिए 'क्षणवादिता का' पर्याय नहीं हैं। कवि अखंड काल की सत्ता वैसे ही देखते हैं जैसे वस्तुओं के सिमित रूप में इस अरूप के सत्ता के दर्शन करना। उदा.

सत्य कि सुरभि पूत स्पर्श हमें मिल जाए

क्षण भर:

एक क्षण उसके आलोक से सन्पृक्त हो

विभोर मह हो सकें

और मह जीना नहीं चाहते

यही कवि के अनुसार 'होने' का क्षण है। होने का अर्थ है समर्पण द्वारा व्यापक सत्य की विराटता का अनुभव करना। शब्द और अर्थ को मिला देने वाला 'आलोक स्फुरण' का क्षण भी ऐसा ही अनुभूति का क्षण है जो स्वयं में पूर्ण होता है। ताकि उसका अमरत्व रहे। क्षण वर्तमान के साथ निरंतर साक्षात् का घटक भी है इसी द्वारा वर्तमान के सौंदर्य व जीवन स्पंदन को अनुभव किया जा सकता है। क्षण का आग्रह दार्शनिक आग्रह तो है ही पर अनुभूति की प्राथमिकता का आग्रह भी है। अनुभूति के क्षण में द्रष्टा और दृश्य, अंह और विराट की एकता, स्थापित होती है क्योंकि अनुभूति 'अद्वितीय है इसलिय कवि वैयक्तिक स्तर पर ही जीवन के अर्थ की उपलब्धि को स्वीकारते हैं। इस प्रकार अज्ञेय के काव्य में रहस्यानुभूति का चित्रण मिलता है।'



अज्ञेय के काव्य में बिंब

अज्ञेय ने अपने प्रारंभिक जीवन में इन्द्रियों को संवेदनशील बना दिया था। यही संवेदना आगे चलकर संवेदना बिंब के रूप में अभिव्यक्त होती है। अज्ञेय एन्द्रिय संवेदना काव्य के लिए उपयुक्त मानते हैं। नई कविता में गूढ़ एवं जटिल का जो आरोप लगा है उसमें प्रतीक और बिंब का भी योगदान है। क्योंकि बिंब रागात्मक अनुभवों पर आधारित होने के कारण व्यापक ज्ञान की माँग करता है। अज्ञेय मानते हैं कि बिंब के कारण ग्राह्य क्षमता बढ़ जाती है। अज्ञेय ने बहुत से अज्ञात प्रतीक और अदृष्ट बिंब खोजकर पूर्ववर्ती दाय का स्वीकार किया है। अज्ञेयने काव्य में प्रचलित बिंबों का किस प्रकार प्रयोग हुआ है :

१) दृश्य बिंब :

अज्ञेय के काव्य में दृश्य बिंब मूल रूप से प्रकृतिपरक रूपों में व्यजित हुए हैं। इसी से 'बावरा अहेरी' महत्त्व पूर्ण है। जिसमें सर्वाधिक प्रकृति परक दृश्य बिंब है। इस में पक्षियों और वृक्षों की भी चर्चा की गयी है। अकेला बैठा कवि जानता है की उसकी चेतना को 'शरद' की साँझ के पंछी भेदते हैं। भार मुक्त/ओ मेरी संज्ञा में तिर जाने वाले पंछी/देख रहा मुक्त हूँ तुम्हें मैं। इसी बीच धुसरा दृश्य बगुलों का मुर्त हो उठता है: जहाँ वे गोलाकार में डोल रहे हैं। प्रकृति के माध्यम से नायिका रूप का भी वर्णन किया गया है, किन्तु रीतिकाल शैली में नहीं; सर्वथा स्वतंत्र रूप में, इसलिए पाठक को अचानक झटका लगता है जब कवि 'बेरे के फूल' के विषय में यह सब कतरा ज्ञान पड़ता :

भोर : वार से नहीं, अनजाने, अचानक
मैंने तुम्हे झरने पर देखा।
आह! ऐसे आलुते हैं तार सोने के,
ऐसे मंजता है कुन्दन। धिरा
ऐसे मानो ओस के प्रभा मंडल से हुआ
पार की धुप में चमक उठता है।
सवेरे का फूल

२) ध्वनि बिंब :

कविता की चित्त में तुरंत व्याप्ति के लिए नाद-व्यंजन की नियोजन आवश्यक है जो श्राव्य बिंब के माध्यम से आती है। इस बिंब के अन्तर्गत कवि वर्ण्य वस्तु की ध्वनि सुनाने का प्रयास करता है। अतः श्रव्य बिंब को ध्वनिबिंब भी कहा जा सकता है। इसे संगीत तत्व की व्याप्ति और नाद योजना से पूर्ण होने के नाते नाद बिंब कहा जा सकता है। अज्ञेय के प्रारंभिक

काव्य से ही श्रव्य बिंब मिलता है। 'हरी घास पर क्षण भर' में भोरबेला मे सींची छत से ओस का तिप-तिप करना, पहाड़ी काक की बेसुर हाक हाक । हाक । हाक । होना अड़डाते काग की काया! काय! काय!, स्टीमर की भराई सिटी, डाकिया के पैरों की चाप, संथाली झुमर का लंबा कसक भरा आलाप, रेल की आहे की तरह धिरे-धीरे खींचना, घरघराता प्लावन का आना आदि का अज्ञेय ने अनेक- कविता में ध्वनि बिंब का चित्रण किया है।

३) घ्राण बिंब :

अज्ञेय द्वारा वर्ण्य विषय की गंद से नासापुटो को प्रभावित करने का प्रयास करता है। कविद्वारा वर्ण्य विषय की गन्ध से नासापुटां को प्रभावित करने का प्रयास घ्राण बिम्बों के माध्यम से किया जाता है। अज्ञेय-काव्य में उनकी यायावरी प्रवृत्ति प्राकृतिक सुषमा की गन्ध ग्रहण करती हुई जान पड़ती है। यायावर 'चिन्ता' से ही हर पल इन मृदुल गन्धों से सुवासित होता है फिर चाहे दिन हो या रात उसे 'मृदू अनामिका से मलाया निल / देता भाल बिन्दु-सा परिमल'

'इत्यलय में आकर 'चिन्ता' का छायावादी प्राकृतिक कवि-मन मात्र सुगन्ध से सुवासित नहीं, उसे तो ऐसी ही किसी रात में बल्कि 'शिशिर की राका-निशा' में गोयडों के गन्धमय अम्बार से वायु त्रस्त जान पड़ती है। 'सागर मुद्रा क्रम-६' में भी इस प्रकार का प्रयोग मिलता है :

वन-तुलसी की तीखी गन्ध
ताजे लीपे आँगनों में गोयडों पर
देर तक गरमाये गये दूध की धुईली बास

इस तरह का दुर्गन्धमय वातावरण अज्ञेय-काव्य में अपवाद स्वरूप ही है। 'हरि घास पर क्षण भर' के लिए आते ही वातावरण परिवर्तित होता है: 'धूम था नैवैद्य-द्रव्यों से सुवासित' और कवि आध्यात्मिक जगत में 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये' की कविता 'धूप-बत्तियों' के माध्यम से विचरण करता है। वातावरण मात्र पूजा सामग्री से ही सुवासित नहीं होता, वरन् प्राकृतिक उपादानों की भी अपनी गन्ध होती है।

मंजरी और कली की गन्ध से वातावरण सुगन्धित हो रहा हैं। सुमन गन्ध में कवि के नासापुट इतने लीन हैं कि 'बावरा अहेरी' की कविता 'नख-शिख' में नायिका की गन्ध भी उसे पुष्प-गन्ध के समान आ रही है:

तुम्हारी देह
मुझको कनक-चम्पे की कली है
दूर ही से
स्मरण में भी गन्ध देती है।

इस प्रकार अज्ञेय काव्य में घ्राण बिम्ब घ्राणेन्द्रिय को प्रभावित करते हैं और नासापुट वस्तु की गन्ध विशेष को अपने आस-पास महसूस करने लगते हैं।

४) स्पर्श-बिम्ब :

त्वचा पर विविध स्पर्श-छुअन, चुभन, शीत, ताप आदि का अनुभव किया जाता है। बिम्ब के माध्यम से ऐसे ही स्पर्शों का अनुभव स्पर्शेन्द्रिय को प्रभावित करता है। स्पर्श बिम्ब की दृष्टि से 'चिन्ता' महत्वपूर्ण है क्योंकि यह प्रेमपरक कथारूपी प्रेमाख्यान है। यहाँ नायक-नायिका को सम्पूर्ण प्रकृति में अपने प्रिय की छवि मालूम होती है इसीलिए 'चिन्ता' में स्पर्श बिम्ब सुन्दर बन पड़े है:

हाँ वह शून्य! हाय वह चुम्बन !
 किससे किसका था वह प्रणय-मिलन-
 किया था किसको मैंने चुम्बन।
 तेरा या तेरे कपोल का
 या उस पर आँसू अमोल का।

'विश्व प्रिया' के नायक को कपोल या आँसू में भ्रम है किन्तु 'एकायन' की नायिका निश्चित है कि:

नित प्रति माथे पर तेरा ही
 ओस-बिन्दु-सा कोमल चुम्बन
 मेरी शिरा-शिरा में जागृत
 किया करे शोणित का स्पन्दन

अज्ञेय के प्रारम्भिक काव्य में जो यौन प्रतीकार्थ मिलते हैं, उन्हें मनोविश्लेषण से प्रभावित माना जा सकता है किन्तु ये प्रतीक प्रकृतिपरक साहित्य से अधिक प्रभावित हैं।

कवि का प्रेमी हृदय धीरे-धीरे परिपक्वता को प्राप्त कर वातावरण के अन्य उपादानों को स्पर्श अनुभव करत गया है। भारत में जलवायु का उपक्रम किस प्रकार चलता है और उसमें प्रकृति कैसा अनुभव करती है उसका बड़ा ही सार्थक चित्रण मिलता है:

जब बहेगी लू/ जब पड़ेगा पाला
 जब आयेगी बर्फ की बछियों से हाड़ों को भेदती-सी
 उत्तर की निष्ठुर हवा,
 झुलसेंगे, पाले मारेंगे तुम्हारे पात-पात अंकुर,
 तब कैसा दर्द होगा ?

इस प्रकार अज्ञेय के काव्य में स्पर्श बिम्ब कोमल और कठोर दोनों रूपों को लेकर चले हैं और कहीं-कहीं स्थूल चित्रण के शिकार हो गये हैं।

५) आस्वाद बिम्ब :

अज्ञेय के काव्य में आस्वाद बिम्ब लेशमात्र ही है। कवि वर्ण्य-विषय विशेष का स्वाद स्वादेन्द्रिय तक पहुँचा देता है। इस प्रकार स्वादेन्द्रिय को संवेदित करने वाले बिम्ब को आस्वाद बिम्ब कहा जाता है। 'चिन्ता' के नायक को पीड़ा का तीखापन मदिरा के तीखेपन के समान लगता है:

तेरी गति में इन आँखों को पीड़ा ही पीड़ा क्यों दीखी ?
तीखेपन के कारण ? पर मदिरा भी तो होती है तीखी।

आस्वाद खाने-पीने की सामग्री से ही नहीं होता 'कितनी नावों में कितनी बार' की स्मृति मात्र ही कटु-मधुर है: 'मीठी कड़वी तीखी सीठी/कसक-किरकिरी कि यादों की रड़कन?' कुल मिलाकर अज्ञेय-काव्य में आस्वाद बिम्बों की मात्रा न्यूनतम है।

६) स्मृति बिम्ब :

स्मृति निर्भर बिम्बों के अन्तर्गत स्मृति चित्रों की कलात्मक नियोजना होती है। चेतना-प्रवाह के कारण मन अतीत में भटक कर अविस्मरणीय क्षणों को वर्तमान में साक्षात् किये रहता है। 'इत्यलम्' में 'कंकरीट का पोर्च' पर हुए इस साक्षात्कार में सुयोग श्रृंगार के क्षण धुँधले ही सही, पर स्मृत हो उठते हैं जब प्रिया के साथ: 'एक दिन दो आने की विलायती मलाई की बर्फ / खाई थी।' 'हरी घास पर क्षण भर' में वो सब कुछ भी 'याद' है जिसमें प्रिय ने प्रिया का स्पर्श किया था:

नहीं भूला। तुम्हारी देह पर जो
खेलती हैं अनमनी मेरी अँगुलियाँ - और जिनका खेलना
सच है, मुझे जो भुला देता है-
सभी मेरी इन्द्रियों की चेतना उनमें जगी है।

इस प्रकार से अज्ञेय के स्मृति बिम्ब संयोग श्रृंगार की राह से गुजरते हुए अन्य भाव संवेदनओं की स्मृति तम पहुँचते हैं। वैयक्तिक स्मृतियाँ आत्म-पीड़ा के घेरे से बाहर आयी जरूर हैं, लेकिन उनके केन्द्र में स्मृतियाँ लगातार कौंधती रही हैं और कवि-मानस् ने बाहरी परिवेश से स्वयं को बहलाने की कोशिश भी करता है।

७) भाव बिम्ब :

भाव बिम्ब कवि के रागात्मक अनुबन्धों पर आधारित होते हैं। अज्ञेय के भाव-बिम्बों में चित्र के अनुभूति पक्ष को स्पष्ट करने के लिए मानवीकरण रूप में चित्र को मूर्त करने का अप्रस्तुत प्रयास किया गया है इसीलिए भाव-बिम्बों को आत्मसात् करने हेतु सन्दर्भ-ज्ञान

आवश्यक है। इन बिम्बों की दृष्टि से 'अरी ओ करुणा प्रभामय' काव्य संग्रह महत्त्वपूर्ण है। वैसे 'चिन्ता' से ही भाव बिम्ब दृष्टिगोचर होते हैं :

शशि रजनी से कहता है
 'प्रेयसि बोलो, क्या जाऊँ ?
 कहता पतंग से दीपक
 यह ज्वाला कहाँ बुझाऊँ'

अज्ञेय के भाव बिम्बों का निर्वाह सम्पूर्ण काव्य-संग्रहों में नहीं हो पाया है, किन्तु जहाँ भी प्रकृति को माध्यम बनाकर रागात्मक संवेदना को जागृत करने का प्रयास कर मानवीय व्यवहार की चर्चा की गयी है वहाँ वे पूर्णतः सफल रहे हैं।



कुरुक्षेत्र का शिल्प

भावपक्ष

भाव पक्ष के अन्तर्गत दो विषयों पर विचार किया जाता है। भाव और रस। कवि दिनकर ने अपने समय में व्याप्त लगभग सभी भावों, विचारों को ग्रहण किया था और उसे अपनी कृतियों में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया था। उन्होंने सौन्दर्य, नारी-प्रेम, प्रकृति, राष्ट्र-प्रेम, समाजिक, राजनीतिक समस्याओं पर अलग-अलग प्रकार से विचार किया था।

कवि ने “कुरुक्षेत्र” दूसरे महायुद्ध के बाद लिखा। इसमें कवि ने राष्ट्र प्रेम और राजनीति का चित्रण किया है।

वस्तु विन्यास

“कुरुक्षेत्र” में कथा का चयन प्रबंध-काव्य के लिए कवि ने किया। यह मनोवैज्ञानिकता एवं प्रतीकात्मकता के कारण हृदय को स्पर्श करता है। “कुरुक्षेत्र” की कथा वस्तु विचार-शील है। उसकी पृष्ठ-भूमि सशक्त है। कवि ने इसमें पुराण कथा के द्वारा संवादों में मार्मिकता लाने में सफलता पायी है। इस कृति की कथा चिन्तन प्रधान है।

कुरुक्षेत्र में कवि ने अन्याय के दमन का स्वर उठाया है। युद्ध टाला जा सकता है। परंतु राजनीतिज्ञ अपने स्वार्थ के लिए उसे रोकते नहीं हैं। अन्याय जब हृद से बाहर हो जाता है तो युद्ध आवश्यक हो जाता है। मनुष्य अपने अधिकार खोना नहीं चाहता इन्हीं भावों को कवि ने कथावस्तु का आधार बनाकर बड़ी सफलता से “कुरुक्षेत्र” की रचना की है –

“छीनता हो स्वत्व कोई, और तू
त्याग तप से काम ले यह पाप है।
पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे
बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ हो।”

शर-शैया पर पड़े भीष्म कहते हैं कि अपना कोई सर्वस्व लूट रहा हो तो वह त्याग और तप से प्राप्त नहीं होता उसे तो जो हाथ अपने तरफ बढ़ रहे हैं उसे काटना चाहिए।

कवि दिनकर ने कुरुक्षेत्र की कथावस्तु का आधार महाभारत से लिया है। कुरुक्षेत्र के माध्यम से कवि बीते युग की ओर संकेत देते हुए कहता है कि संसार के सभी प्राणी अपने सुख के लिए दूसरे का शोषण करते आया है। कुरुक्षेत्र की कथावस्तु भी इसी शोषण को आधार बनाकर लिखी गयी है। कवि ने इस रचना के माध्यम से युद्ध-दर्शन, युद्ध के कारण, शोषक और शोधित का भेद भाव का अप्रतिम चित्रण किया है।

रस

“कुरुक्षेत्र” में स्थायी रस नहीं है। अगर हम किसी एक रस को प्रधान रस मानेंगे तो वह गलत होगा। “कुरुक्षेत्र” में वीर, शांत, श्रृंगार, करुण रस का प्रयोग कवि ने किया है।

“कुरुक्षेत्र” में किसी एक रस की अखंड विद्यमानता का तो अभाव है ही, उसमें हमें सब रस उपलब्ध भी नहीं होते। “अद्भुत-हास्य, श्रृंगार का उसमें लगभग अभाव है, शांत, करुण, रौद्र, भयानक, वीभत्स, और वीर रसों में उत्पन्न होने वाले भाव प्रायः रस बनते-बनते रह गए हैं।”

“कुरुक्षेत्र” में रस का अभाव है यह बात भी नहीं है। उसमें यत्र-तत्र रस प्राप्त होते हैं। रस मन को आनंद देता है। संसार के आनंद से रस का आनंद अलग है। इसीलिए भरत मुनि ने “नाट्यशास्त्र” में रस का सूत्र लिखा है।:

विभावानुभाव व्याभिचारी
संयोगाद्र रस निष्पत्तिः

अर्थात् विभाग, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के संयोग से रस की नियुक्ति होती है। विभाव भावों को बढ़ाने का काम करता है। आलम्बन और उद्दीपन इस प्रकार के विभाव होते हैं। अनुभाव भावों के पश्चात् आते हैं। संचारी भाव क्षणिक होते हैं, यह मूल भाव को सशक्त बनाते हैं।

वीर रस

“कुरुक्षेत्र” में वीर रस का चित्रण कवि ने अधिक मात्रा में किया है। वीर रस में प्रेरणा होती है।

“एक सजाता है धरती का
अंचल फल्ल कमल से
भरता भूतल में समृद्ध सुषमा

अपने भुजबल से।”

शान्त रस

“यह होगा महारण राग के साथ
युधिष्ठिर ही विजयी निकलेगा
नर संस्कृति की रणछिन्न लता पर
शांति सुधा पर दिव्य फलेगा
कुरुक्षेत्र की धूल नहीं इति पथ की
मानव ऊपर और चलेगा,
मनु का यह पुत्र निराश नहीं
नाव धर्म प्रदीप अवश्य जलेगा।”

“कुरुक्षेत्र” का युद्ध समाप्त होने के बाद धरती का नाश और विधवा नारियों पुत्रहीन माताओं के विलाप का वर्णन कवि ने इन पंक्तियों द्वारा किया है।

रति

“बही न कोमल वायु कुंज
मन भी था कभी न डोला।
पत्तों की झुरमुट में छिप कर
विहग न कोई बोला।
चढ़ा किसी दिन फूल, किसी का
मान न मैं कर पाया।
एक बार भी अपने को या
धन न मैं कर पाया।”

करुण रस

युद्ध के पश्चात् कवि ने धरती की दशा का करुणामय वर्णन किया है, उसका उदाहरण है-

“इस रोती हुई विधवा को उठा
किस भांति गले से लगाऊँगा मैं ?
जिसके पति की न चिताही बुझी
निज अंक में कैसे बिताऊँगा मैं।”

कवि ने यहां युधिष्ठिर के मन में जो करुण भाव उत्पन्न होते हैं उसका वर्णन किया है।

वात्सल्य रस

अर्जुन के प्रति पितामह के मन में जो प्रेम था वह वात्सल्य रस का “कुरुक्षेत्र” में अप्रतिम वर्णन मिलता है।

“लो अपना सर्वस्व पार्थ।

ये मुझको मार गिराओ

अब है विरह असध्य मुझे

तुम स्नेहधाम पहुंचाओ।”

कवि दिनकर ने कुरुक्षेत्र में अधिकाधिक रसों को अपनाने का प्रयास किया है।

४.२ कला पक्ष

किसी भी काव्य में भाव-पक्ष ओर कला पक्ष होता ही है, जिस काव्य में कलापक्ष और भावपक्ष न हो तो वह काव्य कैसा बन सकता है। कला पक्ष के अन्तर्गत अलंकार, भाषा, शैली, छंद इनका विवेचन किया जाता है।

कला इस शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। “कला” मानवीय भाव की वाग्दता है, वस्तु की नहीं।” “ललित कला” और “उपयोगी कला” इस प्रकार उसका विभाजन किया है। ललित में साहित्य, संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला, वस्तुकला इनका समावेश होता है, जबकि उपयोगी कला में लुहार, सोनार आदि की व्यावसायिक कलाओं का समावेश होता है। इतना ही नहीं शैया सजाना, माला गूंथना आदि कलाओं का भी इसमें समावेश होता है। परंतु हम जब काव्य कला की बात करते हैं तो कविता में अलंकार, छंद, भाषा-शैली को लेते हैं। अलंकार छंद, भाषा-शैली, शब्द को लेकर काव्य का निर्माण करते हैं। अलंकार छंद, भाषा-शैली, शब्द का लेकर काव्य का निर्माण करते हैं। जिस प्रकार वास्तु कला का निर्माण करते समय पत्थर, ईंट, गारा, पानी आवश्यक होता है। उसी प्रकार काव्य कला के निर्माण के लिए अलंकार, छंद, भाषा शैली की आवश्यकता होती है।

अलंकार :

काव्य को सजाते हैं, इसी कारण अलंकार को काव्य को सजीव करने का साधन मानते हैं। कवि के मन के भावनाओं को और भाषा को जो साधन अलंकारित करता है उसे अलंकार कहते हैं। अलंकार काव्य का अनिवार्य साधन है। उसके बिना काव्य पूर्ण हो ही नहीं सकता। क्योंकि अलंकार काव्य का एक अंग है। अलंकार काव्य की शोभा बढ़ाते हैं।

“अलंकार और काव्य का घनिष्ठ संबंध है। काव्य के लोकोत्तर स्वरूप (जो काव्य का वास्तविक आशा होता है) की प्रकाशित करने में अलंकारों का सहयोग अमूल्य है। अलंकार ऊपर से लादी गई वस्तु नहीं है, अपितु उक्ति को अधिक रमणीय बनाने वाली शक्ति का नाम है। जो अलंकार योजना रसानुभूति में व्यवधान डालती है, अथवा उसकी प्रेषणीयता में बाधा

पहुँचाती है, उसका कोई मूल्य नहीं है उसे अलंकार शोभा की उपयुक्त प्रतिनिधि नहीं माना जा सकता।”

अलंकार के मुख्य दो भेद हैं। शब्दालंकार और अर्थालंकार। जो अलंकार भावों में चमत्कार लाते हैं उन्हें अर्थालंकार, और जिन अलंकारों द्वारा शब्दों में चमत्कार निर्माण होता है, उन्हें शब्दालंकार कहते हैं। कुरुक्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले अलंकार निम्नलिखित हैं:-

“शरों की नोक पर लेटे हुए गजराज जैसे।
थके टूटे गरुड से पन्नगराज जैसे।”

उपमा अलंकार :

इस काव्य पंक्ति को पढ़ने के बाद आँखों के सामने चित्र खड़ा होता है। दिनकर जी ने यह चित्र खड़ा करने के लिए उपमा अलंकार का प्रयोग किया है। कवि दिनकर ने पितामह भीष्म की गजराज से तुलना की है। दूसरी पंक्ति में गरुड की उपमा दी है। भीष्म मन से और शरीर से ‘थके’ और ‘टूटे हुए’ दिखाई देते हैं। इन पंक्तियों में भीष्म के अगाध सहन शक्ति का चित्रण मिलता है।

“नर नारियों के मुख देश पे नाश की
छाया-सी एक पड़ी हुई है।”

उपरोक्त पंक्तियों में रूपक अलंकार है। इसके माध्यम से कवि ने देश की रूपकता का वर्णन किया है। विध्वंसता के कारण नर-नारियों के मुख मलीन हो गये हैं।

कुरुक्षेत्र में कवि ने उत्प्रेक्षा अलंकार को भी लिया है। प्रस्तुत वस्तु की अप्रस्तुत के रूप में संभावना करने को उत्प्रेक्षा कहते हैं :-

“बाहर से भला कक्ष में जो छिपाता हूँ कभी
थो भी सुनाता हूँ अट्टहास क्रूर काल की,
और सोते जागते में चौक उठता हूँ मानों,
शोषित पुकारता हो अर्जुन के लाल का।”

इस पद में युधिष्ठिर की मनोव्यथा का विभिन्न परिस्थितियों के माध्यम से सजीव चित्रण हुआ है। इन पंक्तियों में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

“बात पूछने को विवेक से
जभी वीरता जाती,
पी जाती अपमान पतित हो
अपना तेज गवाती
सच है, बुद्धि-कलश में जल है,
शीतल सुधा तरल है,

पर भूलो मत कुसमय में हो
जाता वही गरल हैं।”

इसमें वीरता और तर्क-वितर्क का परस्पर विरोध है। यही इन पंक्तियों में है।

भीष्म भी इस तर्क-वितर्क के जालों में नहीं फंसते वीरता विवेक से पूछने जाती में,
दुर्योधन ने द्रौपदी की लाज नहीं लूटी थी, वहाँ तो बैर और ईर्ष्या की भीषण आग निर्भय होकर
प्रकट हो गयी थी पंक्तियों में अपन्हृति अलंकार है।

उदाहरण

“भरी सभा में लाज द्रौपदी
की न गयी थी लूटी,
वह तो यही कराल आग
भी निर्भय होकर फूटी।”

कवि दिनकर ने दृष्टांत अलंकार का भी चित्रण कुरुक्षेत्र में लिया है-

“हिंसा का आघात तपस्या ने
कब वहाँ सहा है
देवों का दल सदा दानवों
से हारता रहा है।”

देवताओं के पराजय का वर्णन यहीं कवि करता है। देवता तपस्या के प्रतीक है और
राक्षस हिंसा के। यहाँ दोनों का धर्म एक नहीं है फिर भी दोनों समान दिखाई देते हैं। यह दुष्टांत
अलंकार का उत्कृष्ट उदाहरण है।

“पीकर लहू जब आदमी के वक्ष का
वज्राभ पाण्डव भीम का मन हो चुका परिशांत था।”

यहाँ परिकर नामक अलंकार है। दुःशासन ने अपने भाई की आज्ञा से द्रौपदी को
खींचकर दरबार में लाया और वस्त्र विहीन करके उसका अपमान किया था। तभी दुःशासन की
छाती का लहू पीने की भीम ने प्रतिज्ञान ली थी। परंतु वस्तुतः वह काम किसी सहृदय मनुष्य का
काम नहीं है। यह तो दानवों का काम है। इन पंक्तियों में परिकर अलंकार है।

इस प्रकार कुरुक्षेत्र में दिनकर ने सभी अलंकारों को अपनाया है। दृष्टांत, अपन्हृति,
ज्याजस्तुति, विशेषोक्ति, उल्लेख, रूपक, उपमा अलंकारों का वर्णन कुरुक्षेत्र में दिखाई देता है।

छंद

“कुरुक्षेत्र” में दिनकर ने विभिन्न छंदों का प्रयोग किया है। “कुरुक्षेत्र” में ‘मुक्तक’
और मांत्रिक छंद सफलता से मिलते हैं। मांत्रिक और मुक्त बंदी के अलावा रूपमाला,
आनन्दवर्द्धक, राधिका, सरसी, घनाक्षरी दोहे का भी प्रयोग किया है।

कुरुक्षेत्र का अध्ययन करने के बाद यह स्पष्ट होता है कि उसमें मांत्रिक छंदों का ही प्रयोग अधिक मात्रा में है। कुरुक्षेत्र में वर्णिक छंद भाषा दे प्रवाह के साथ साधक हो गये हैं।

“जब युद्ध में फूट पड़ी यह आत तो,
कौन-सा पाप नहीं किया तूने ?
गुरु के वध के हित झूठ कहा,
सिर काट समाधि में ही लिया तूने ?
छल से कुरुराज की जाँघ को तोड़
नया रण-धर्म चला दिया तूने
अरे पापी, मुमूर्षु, मनुष्य के वक्ष को
चीर सहास लहू पिया तूने।”

“युधिष्ठिर की आत्मा ग्लानि को प्रकट करने के लिए कवि ने सवैया, सुन्दरी दंड का प्रयोग किया है। इसमें आठ सगण और अन्त में गुरु है।”

कवि ने मांत्रिक छंदों का सर्वाधिक प्रयोग किया है। लतिल पद का उदाहरण

“समर निंद्य है धर्मराज, पर
कहो, शान्तिवह क्या है,
जो अनीति पर स्थित होकर भी
बनी हुई, सरला है।”

सारा छंद

“दिनकर को मांत्रिक छंद अधिक प्रिय था। उन्होंने “रसवंती” “सामधेनी” “इतिहास के आँसू”, “रश्मिरथी” आदि में भी इसका प्रयोग किया है। इस छंद के प्रत्येक चरण में २८ मात्राएँ होती हैं तथा चरणान्त में दो गुरु होते हैं।”

कुरुक्षेत्र का उदाहरण देखिए

“ब्रह्मचर्य के प्रण के दिन जो
रुद्ध हुई थी धारा,
कुरुक्षेत्र में फूट उसी ने
बनकर प्रेम पुकारा।
वही न कोमल वायु, कुंज
मन का या कभी न डोल,
पत्तों की झुरमुट में छिप कर
विहग न कोई बोला।
चढ़ा किसी दिन फूल, किसी का
मान न मैं कर पाया
एक बार भी अपने को था

दान न मैं कर पाया।”

वर्णिक छन्द

कुरुक्षेत्र के द्वितीय सर्ग में वर्णिक छंद के उदाहरण मिलते हैं। युधिष्ठिर के मन की दशा का वर्णन जो युद्ध समाप्ति के बाद उसके मन में द्वंद्व निर्माण होता है उसका वर्णन जो युद्ध समाप्ति के बाद उसके मन में द्वंद्व निर्माण होता है उसका वर्णन इसमें चित्रित होता है। यह वर्णन कवि ने कवित्व छंद द्वारा किया है कवित्त में ३१ वर्ग होते हैं, १६ अक्षरों पर पति।

“जनता कही जो परिणाम महाभारत का,
तन बल होड़ मैं मनोबल से लड़ता।”

दिनकर ने कुरुक्षेत्र में तृतीय, चतुर्थ और सप्तम सर्गों में राधिका ललितपद छंदों का प्रयोग किया है। ललितपद में २६ मात्राएँ और राधिका में २२ मात्राएँ होती हैं-

राधिका -

“शारदे! विकल संक्रांति-काल का नर में,
कलिकाल-माल पर चढ़ा हुआ द्वापर में
संतप्त विश्व के लिए खोजने छाया,
आशा में था इतिहास लोक तक आया।”

मुक्त छंद :

कुरुक्षेत्र में आरंभ ही अतुकान्त मुक्त छंद से हुआ है। इसमें पंक्तियों के नियोजन के लिए कथन-भगिमा की प्रभावात्मकता का ध्यान में रखा गया है।

कुरुक्षेत्र में मुक्त छंद का उदाहरण-

“घुट रही नर बुद्धि की है साँस,
चाहती वह कुछ बड़ा जग, कुछ बड़ा आकाश।
यह मनुज, जिसके लिए लघु हो रहा भूगोल,
अपर ग्रह जय की तुषा जिसमें उठी है बोल।
यह मनुज विज्ञान में निष्पात,
जो करेगा, स्यात, मंगल और लघु बात।”

दोहा

दोहे का प्रयोग संपूर्ण कुरुक्षेत्र में केवल एक बार आया है।
“अन्त नहीं नर पंथ का, कुरुक्षेत्र की धूल,
आँसू बरसे तो यहीं खिले शांति का फूल।”

काव्य-भाषा

अभिव्यक्ति का साधन एक मात्र भाषा ही है। भाषा के कारण कविता रंगीन, सुरक्षित बन जाती है। भाषा ही श्रोता को प्रभावित करती है। दिनकर ने ऋजु सहज, सार्थक, एवं भावानुकूल है। दिनकर उर्दू, संस्कृत, फारसी, तत्सम, तद्भव, शब्दों का प्रयोग स्वच्छंदता-करते हैं। दिनकर की भाषा सत्यम, शिवम्, सुन्दरम् का रूप लेती है।

कुरुक्षेत्र की भाषा उदार है। आवश्यक के अनुसार कवि ने नई संस्कृत शब्दों का प्रयोग भी किया है। कवि अपनी अभिव्यक्ति केवल भाषा के द्वारा ही व्यक्त करता है। दिनकर ने “कुरुक्षेत्र” की भाषा साहित्यिकी खड़ी बोली के रूप में चुनी है। “कुरुक्षेत्र” में संस्कृत के शासित, कालायस, न्यास निभ, वस्त्र आदि तो उर्दू के दर्द, मंजिल, दाग, शाम, आदि शब्दों का प्रयोग किया है।

वह कौन रोता है वहाँ,
इतिहास लिखा है, नौजवानों के लहू का मौल है
प्रत्यय किसी बूढ़े, कुटिल नीतिज्ञ के व्यवहार का,
जिसका हृदय उतना मलिन जितना कि शीर्षक वुलक्ष है,
जो आप तो लड़ता नहीं,
कटवा किशोरों को मगर,
आश्वस्त होकर सोचता
शोणित बहा, लेकिन गयी बच-लाज
शारे देश की।
भाषा की दृष्टि से कुरुक्षेत्र, सशक्त है।

शैली

“कुरुक्षेत्र” में अनेक प्रकार की शैलियों का प्रयोग कवि दिनकर ने किया है। दिनकर ने कुरुक्षेत्र में नाटकीय, तुलनात्मक, मनोवैज्ञानिक, तर्क, दृष्टांत, व्याख्यात्मक आदि शैलियों का प्रयोग किया है।

नाटकीय शैली का उदाहरण

“पर सब कुछ हो चुका, नहीं कुछ शेष क्या जाने दो
भूली बीत बात नये, युग को जग में आने दो।”

दृष्टांत शैली

“हिंसा की आघात तपस्या ने कब कहाँ सप्त है,
देवों का दल सदा दानवों से हारता रहा है।”



कुरुक्षेत्र की सर्गानुसार कथा- (केवल तृतीय एवं चतुर्थ सर्ग)

तृतीय सर्ग :

इस सर्ग में भीष्मने युधिष्ठिर को युद्ध और शांति के बारे में समझाया है। युधिष्ठिर सोचते हैं कि महाभारत उसी के कारण हुआ है, स्वयं को दोषी माना है। भीष्म युधिष्ठिर का समाधान इस सर्ग में करते हैं।

पितामह भीष्म धर्मराज को समझाते हैं कि- धर्मराज, युद्ध निन्दनीय है। परंतु तुम उस शांति को क्या कहोगे जो शांति अन्याय के आधार पर होगी। जो शान्ति दूसरों का सुख-चैन-समृद्धि, छल-कपट से हासिल करके अपना खजाना-छल कपट से भर लेते हैं। जो दूसरों की रोटी छीनते हैं, उसे तुम कौन सी शान्ति कहोगे। जो लोग दूसरों का सब कुछ लूट लेते हैं, और उसपर पहरेदार बिठा देते हैं और कहते हैं कि कुछ मत बोलो शान्ति की अमृतधारा बहरही है, उसमें तुम युद्ध का जहर मत घोलो। शान्ति के रखवाले लोगो से कहते हैं कि तुम हिलो डुलो मत शांत रहो हमें अपने हृदय का खून पीने दो, इस प्रकार की शांति वाले कहते हैं कि तुम स्वयं भी जिओ और दूसरों को जीने दो। सही तो यह है कि जिनके हाथों में सत्ता एकत्रित हो गई है। वे शान्ति के भक्त साधु पुरुष बन जाते हैं वे युद्ध नहीं चाहते।

हे युधिष्ठिर। जिस समाज में न्याय से और नम्रता से सुख का सही ढंग से बंटवारा नहीं है वहां अशांति तलवार के बल पर दबी रहती है। जिस समाज में शासक दुष्ट हैं वे समाज के सूत्रधार शांति कैसे बनाये रखेंगे।

जो शासक अनिति पर चलते हैं या समाज के सूत्रधार ही अन्यायी होते हैं, जहाँ सत्य बोलने वालों के सिर उतार दिये जाते हैं, वहां पर शासक का एक मात्र सहारा तलवार की शक्ति होती है, वहाँ पर समाज में भय और क्रोध से अन्याय के कारण मन जलता रहता है, जिस शासन में जुल्म को सहते-सहते मानव का मन मर रहा हो, वह समाज अपने आपको धिकक्कारता है, जहाँ शासकों के अहंकार और समाज के हृदय में घृणा की चिनगारी का सदैव संघर्ष चल रहा हो, वहाँ पर ऊपर से शांति दिखाई देती हो, परंतु अंदर ही अंदर क्रांति की ज्योति सुलग रही होती है, जहाँ समय के मुख पर आगे आने वाला विस्फोट दमक रहा हो, वहाँ विवश भावों का संकेत अंगार के समान चमक रहा हो वहाँ जनता का क्रोध उभरता हुआ दिखाई देता है।

जिस समाज में जनता के हृदय में पनपती क्रांति की चिनगारियों के निशान को देखकर जो शासक न संभले और अपनी दुष्ट बुद्धि की आग तीव्र कर नये-नये शोषण के मार्ग को अपनाता है। कभी उपेक्षा, दमन, अपमानों से और भी बाणों के समान चुभने वाले व्यंग्य वचनों से जनता की क्रांति को दबा देता है। और जहां दबे हुए आवेग उभर कर एकाएक आये तो मनुष्य अपना संयम खो देता है और मृत्यु का रूप धारण करके शोधक पर टूट पड़ता है। हे युधिष्ठिर! तुम्ही कहो इसका उत्तरदायी कौन होगा? उस युद्ध का दोषी शासक होगा या शोषित समाज? तुम इस को लेकर चिंतित हो कि तुम्हारे हाथों से समाज का नाश हुआ है। परंतु तुम सोचो तो, यह युद्ध की आग अचानक अम्बर से तो नहीं बरसी। या अक्समात धरती से तो नहीं फूटी? या मंत्रों के बदल से नहीं उत्पन्न हुई? इस युद्ध के कारण तो अनंत काल से उभरते आ रहे थे?

हे धर्मराज! कुरुक्षेत्र का युद्ध आरंभ होने से पूर्व वह युद्ध क्या चल नहीं रहा था? बदला लेने की आग प्रत्येक के मन में नहीं जल रही थी। फिर तुम क्यों अपने आप को दोषी मान रहे हो। समाज की शांति जब खड्ग लेकर अन्यायी अत्याचारी को अपना अन्याय बंद करने के लिए कहती है, तो समझ लेना चाहिए कि एक महाभयंकर युद्ध का आरंभ होने वाला है। जब तक समाज में व्यक्ति को सुख समान रूप से नहीं प्राप्त होता तब तक समाज में अशांति होती ही रहेगी। इस प्रकार की शांति शरीर पर नहीं मन पर राज्य करती है। मनुष्य के विश्वास श्रद्धा, भक्ति, प्रणय पर भी समान शान्ति के शासक वालों का शासन होता है। वहीं शांति सही रूप में शांति होती है। कवि दिनकर के कुरुक्षेत्र के द्वारा समाज में साम्यवाद का दर्शन स्थापित करवाते हैं।

न्याय, शांति प्रस्थापित करने की पहली सीढ़ी है। जब तक समाज में न्याय नहीं प्रस्थापित होता तब-तक शांति का महल मजबूत नहीं रहता। ऐसी शान्ति तो अपने आप से भी डरती रहती है और वह तलवार के सिवाय किसी पर विश्वास नहीं करती। जिन्हें इस प्रकार की शांति में सुख प्राप्त होता है, उन्हें यह जीवन का आधार लगती है। यह शांति कठिनाई से प्राप्त होने वाली सिद्धि है। परंतु जिनकी हड्डिया चबाकर उनके तन का खून पीकर ऐसी शांति समाज में टिकी रहती है। तुम उनके मन का भी कुछ सोचो जो शोषित है।

अपना अधिकार जब मिलता नहीं, तब संगठन बनाना पाप नहीं है। हे धर्मराज! तुम्हीं कहो कि शोषित जनता जिये या मरे? अपना अधिकार जब माँगने से नहीं मिलता तब अपने अधिकार के लिए संघर्ष करके, युद्ध करके अपना अधिकार प्राप्त करते है, फिर उसमें उसके प्राण भी गये तो चलता है। यह किसने कहा कि अपना अधिकार प्राप्त करने के लिए युद्ध करना पाप है। न्याय के लिए तलवार उठाकर युद्ध में मरना पाप नहीं है, यह तो व्यक्ति का धर्म है। दया, क्षमा, तप, तेज, मनोबल को दुहराकर तुम व्यर्थ में मनुष्य की क्षुद्रता को प्रकट कर रहे हो। हिंसा का आघात तपस्या कभी नहीं सहती इसी कारण तो देवताओं का दल हमेशा हारता रहा है। हे धर्मराज! तुमको मन-शक्ति इतनी प्यारी थी तो तुमने भरत राज्य का लोभ क्यों किया? क्यों वन से वापस आये हो, वहीं क्यों नहीं रहे वही समाधान क्यों नहीं माना? कितने अत्याचार हुए है। दुर्योधन ने धोखे से विष पिलाया, लाक्षागृह में तुम्हे रखकर उसे जला दिया, तुम्हे वन जान पड़ा और तुम्हारी पत्नी द्रौपदी के बालों को पकड़कर भरी सभा में खींचकर लाया गया, उसे दासी कहा गया, न जाने कितने अनगिनत अत्याचार दुर्योधन ने तुम पर किये, फिर भी तुमने दया, क्षमा, तप, त्याग का सहारा लिया, तब भी दुर्योधन ने तुम से हार नहीं मानी। धर्मराज, तुम शत्रु को क्षमा करके उनके सामने कितना भी सिर झुकाया, कौरवों ने तुम्हे उतना ही कायर समझा।

धर्मराज, अत्याचार सहन करने का यही कु फल होता है, पुरुष कोमल हो जाए तो उसके शक्ति से कोई प्रभावित नहीं होता। क्षमा तो उस भुजंग को शोभा देती है, जिसके पास जहर हो। जिसके पास दांत ही न हो, जहर नहीं है, जो विनम्र है, उसे क्षमा शोभा नहीं देती। क्षमा तो शक्तिशाली पुरुष को शोभा देती है, शक्तिहीन पुरुष को नहीं। धर्मराज भगवान राम का तुम उदाहरण लो, तीन दिन वे सागर से प्रार्थना करते रहे कि मुझे जाने के लिए मार्ग दो, तीन दिन के विनय, प्रार्थना से सागर से एक आवाज भी नहीं उठी, तब भगवान राम के पौरुष की, शक्ति की ज्वाला बाण के रूप में धधक उठी, तब सागर भयभीत हो गया और राम की शरण में रक्षा करो! रक्षा करो! कहता हुआ आ पड़ा, तब सागर ने राम के चरणों की पूजा की और दासता स्वीकार कर पुल बनकर रह गया।

सही रूप में देखा जाये तो बाणों में ही क्षमा शोभा देती है। शक्तिशाली पुरुष का ही लोग आदर करते हैं, जिस व्यक्ति में विजय की शक्ति हो उसकी बात भी लोग मानते हैं।

दया, क्षमा, शक्ति और सहनशीलता को लोग तभी पूजते हैं, जब उसके साथ व्यक्ति में शक्ति का अभिमान जगमगाता हो। जहाँ शक्ति नहीं है, वहाँ शत्रुओं को सुधारा नहीं जाता, वहाँ पर क्षमा का कोई प्रभाव नहीं होता, क्षमा वहाँ जहर का घूँट पीने का बहाना मात्र होती है। अपनी कायरता को छिपाने के लिए क्षमा का ढोंग रचाते हैं और उसका परदा अपनी कायरता पर डालते हैं। कायर को क्या पता कि जलती हुई आग क्या है? वे क्या जाने मनुष्य के अंतरगत हृदय में ऐसी कौन सी असहनशील उत्तेजना की आग है जो हृदय को स्पर्श करते ही सिर उठाती है।

जिनकी भुजाओं की शिराएँ कभी फड़की ही नहीं, जिनके लहू में शक्ति की आग नहीं है, वे हमेशा शिव के चरणों का अमृत ही पीते रहते हैं, जिन्होंने कभी अनीति का स्वाद ही नहीं चखा उनके मन में जोश की आग नहीं जागती, उन्हें जरा सी ठेस लगने पर स्वाभिमान नहीं जानता, क्योंकि उन्हें अपनी भुजाओं की शक्ति पर विश्वास नहीं होता। वे आत्मबल के भरोसे बैठते हैं। जिसे शत्रु पर वार करना नहीं आता उनकी सहन-शीलता क्षमा किस काम की, करुणा, क्षमा के सिवा उनके पास कोई साधन नहीं होता, क्योंकि वे शत्रुओं से बदला नहीं ले सकते। बेबस व्यक्ति ही शत्रुओं के प्रहार को चुपचाप सह लेता है। जिनकी नसों में पुरुषत्व की धार नहीं है, उनके पास दया, क्षमा और तप नपुंसकता का कलंक होता है। वीर व्यक्ति का श्रृंगार तो क्षमा कर देना है।

मनुष्य में बदले की भावना रहती है। जिस मनुष्य में प्रतिशोध की भावना नहीं होती वह तो महापाप है। प्रतिशोध वही लोग नहीं लेते जो अपमान सहन करते हैं, उनमें वीरता की आग नहीं होती। जिसके हाथों में मजबूत धनुष है, जिसके तरकश में तीर है, वे चोट खाकर सहनशील बन कर नहीं रहते। वे अपने शत्रु का बदला आवश्यक लेते हैं। सहनशीलता क्षमा तो विजय पाने वाले पुरुष का भूषण होता है, हारी हुई जाति के लिए वह शाप होता है। जहरीले साप के शरीर से तिनके का अगर स्पर्श भी हो उठता है तो वह बदले की भावना से क्रोध में फुंफकार उठता है। वनों में हाथी के चित्कार को सिंह सुनता है तो वह अपनी गुंफा में भी हुंकारने लगता है। शरीर को थोड़ा सा दबाव पड़ने पर कांटे शरीर में चुभ जाते हैं, अंगार का थोड़ा सा स्पर्श होने के बाद आग जला डालती है। पृथ्वी को निगल डालने के लिए ही सागर गर्जना करता है। सारे संसार में बदले की भावना बिखरी हुई नजर आती है। प्रतिशोध लेना चेतन और अचेतन प्राणियों का जन्मसिद्ध अधिकार है।

भीष्म युधिष्ठिर से आगे कहते हैं कि सेना सजाकर दूसरों का अधिकार छीनना युद्धहीनता का प्रतीक है यह क्षत्रिय धर्म के लिए विरुद्ध है। वासना और लोभ से कभी भी पुण्य उत्पन्न नहीं होता। व्यापारी अगर हाथ में तलवार उठा लेगा तो वह पाप होगा। जब शेर चोट खा कर जाग उठता है तो उसमें बदला लेने की भावना उमड़ पड़ती है। तब तलवार उठाई जाती है, उसकी चमक में पुण्य ही छलकता है। वायु जब आग को छूती है तो वह धधक उठती है, यह तो वायु का गुण धर्म है। इसलिए कोई आंधी को बुलाता है। भयंकर मुखवाला ज्वालामुखी एक न एक दिन फूटता ही है, तो भी संसार उसके मुख पर बैठकर क्यों शोर मचाता है। इसका उत्तरदायित्व ज्वालामुखी का नहीं उस पर बैठने वालों का है। साँप को खरोच मारकर क्यों जगाता है, क्योंकि उसके जगने के बाद तो संसार में तूफान मचा देगा। क्योंकि उसके स्वाभिमान को किसी ने ठोकर मारी है, वह संसार का नाश करने के लिए तत्पर होगा।

हे धर्मराज, तुम बताओ अन्याय का ध्वज लेकर चलने वाला युद्ध बुलाता है या अन्याय को कुंचलने की कोशिश करता है? दमन के चट्टान से दबा हुआ व्यक्ति युद्ध का कारण होता है, या आनंद में मस्त होकर चलता है? जो समाज की शांति लूटता है? वही युद्ध का कारण होता है। जो नकली शक्ति का चक्रव्यूह बनाकर सबका सुख चैन लूट रहा है, जो भूख से व्याकुल है, उन्हें भूख की आग में जलाता है और भूखा व्यक्ति तो जाल तोड़ेगा ही, फिर तुम बताओ कौन युद्ध का निर्माण करता है, झूठी शांति का चक्रव्यूह बनाने वाला या भूख से व्याकुल होकर जाल काटने वाला।

शोषित व्यक्ति जब जाग उठता है और तलावार उठाता है तो वह पाप नहीं होता। उसे पापी कहना तो देखने वालों की भूल है। समाज का शोषण करने के लिए सत्ताधारी कृत्रिम शांति की रचना करता है वह तो वास्तव में युद्ध है और भीषण क्रांति होती है और इस अकृत्रिम शांति को सहना मानवता की जीत नहीं हार है, ईश्वर का घोर अपमान है वीरता का अभाव है। मानवता की मृत्यु होना मनुष्य के लिए सबसे बड़ा पाप है। मानवता की रक्षा करना, विद्रोह करना, क्रांति करना मानव का धर्म है।

पितामह भीष्म धर्मराज से कहते हैं कि – पृथ्वी पर स्नेह का प्रेम का साम्राज्य हो। मानव का जीवन सीधा-साधा मधुरमय हो। शत्रुता का वैर हमेशा के लिए दूर हो। निरन्तर मनुष्यों के मन में प्रेम की धारा बहती रहे और मनुष्य अपने आचारण द्वारा एक दूसरे के हृदय में प्रेम का बीज निर्माण करे। परंतु अभी तो संसार आधे मार्ग तक ही पहुंच सका है। शान्ति का स्वप्न तो नभ के तारों के समान दूर जगमगता हुआ दिखाई दे रहा है। भूल भटक कर ही धरती पर शान्ति का आदर्श आता है। और युधिष्ठिर जैसे किसी व्यक्ति के हृदय में वह मूर्तिमान हो उठता है।

घृणा, कलह बार-बार शत्रुता के पथरीले किले से टकराकर हिंसा से संघर्ष करके तथा मनुष्य के मानसिक जीवन के लोहे के दरवाजे को बंद पाकर, यह देखता है कि शान्ति से आदर्श का प्रभाव जड़ तथा संकुचित वृत्ति वाले, मनुष्यों पर बिल्कुल नहीं पड़ता, क्योंकि यहाँ पर तो केवल एक ही युधिष्ठिर है और अनगिनत दूर्योधन है। शांति के सत्ता को बढ़ने वाले पोषक द्रव्य ही कहाँ है।

शान्ति से प्रेम नहीं करता। शान्ति कोई बाह्य साधन नहीं है जो ऊपरसे लादा जाये। शान्ति को आत्मा का प्रकाश होता है, जो पवित्र हृदय से उभर उठती है।

शान्ति उस आकर्षित मार्ग का नाम है, जो भलीभाँति प्रेम जानता हो नकली शान्ति भयभीत शरीर उसे नहीं मानता, प्रत्येक मानव का मन पवित्र शान्ति से प्रेम करता है।

शिव व पार्वती की प्रतिमा कुम्हार के घर नहीं बनती जो शांति का प्रतीक है। उसका घर तो मानव के हृदय में हमेशा-हमेशा के लिए होता है।

विष के समान घातक को बैर के समान भड़काने से शान्ति समाप्त नहीं उससे तो मनुष्य का स्वभाव ही शान्ति का रूप धारण करता है। जब ऐसी शान्ति प्रकट होती है तब किसी प्रकार का भय शेष नहीं रह जाता, कोई भी सन्देह और अंधेरे में घिरा नहीं रहेगा, सारा देश उजाले से प्रकाशित रहेगा। इस प्रकार की शान्ति आनंद देने वाली होती है यह समान अधिकार एवं कर्तव्य का वितरण करती है। आज की शांति तो विषमता का ही पोषण करती है।

नकली शांति उस स्त्री के समान है जो सुंदर है, उसकी वाणी मधुर है और शरीर पर शुभ वस्त्र धारण किए हुए है, उसके दांत जहरीली नागिन के समान विष से भरे हुए हैं। हे युधिष्ठिर! इस शांति से तुम सावधान रहना। यह नकली शांति जरासंध के बन्दीगृह को राजाओं से भर देती है। जरासंध के राज्य में भी शान्ति थी परंतु वह तो तलवार के बल पर की शांति थी। नकली शांति तो लोगों का खून और आँसू पीती है।

हे युधिष्ठिर। कुरुक्षेत्र में जो शान्ति जली वह शान्ति नहीं थी वहाँ अर्जुन ने जो धनुष बाण छोड़ा था वह पाप नहीं था। महाभारत में जो कुछ नष्ट हो गया है वह जनता का अधिकार छीनने वाली नकली शांति थी, जो असहनीय थे उनका पराक्रम, शक्ति अर्जुन के बाणों से जाग उठी।

कृत्रिम शांति में जो दूसरों के अधिकारों को छीन लिया था और शांति चाहने वालों का जीवन दूभर हो गया था वे अपने प्राणों की बाजी लगा कर कृत्रिम शांति को समाप्त करने के लिए अपने प्राण हाथों में लेकर उस शांति पर नागिन के समान टूट पड़े।

हे युधिष्ठिर! तुम ही बताओ पापी कौन है? न्याय को छीनने वाला था न्याय मांगने वाला? या तो न्याय को खोजते फिरता है उसका अपने तलवार के बल पर उसका शील उड़ाने वाला। हे युधिष्ठिर तुमने युद्ध करके अपने कर्तव्य का पालन किया है। पापी दुर्योधन का जो तुम्हारा हक होकर भी तुमसे उन्होंने छीन लिया था।

इस प्रकार युधिष्ठिर के मन में जो युद्ध समाप्ति के बाद ग्लानि निर्माण हो गयी थी। महाभारत में नाश हुआ है, वह उनके कारण हुआ है, यह शंका इस सर्ग में कवि भीष्म द्वारा युधिष्ठिर के मन से निकालने का प्रयास करता है।



चतुर्थ सर्ग

चतुर्थ सर्ग, भावपूर्ण और मनोवैज्ञानिक तथ्यों से परिपूर्ण है। कुरुक्षेत्र में महाभारत के युद्ध का आविर्भाव प्रस्तुत किया है। पितामह भीष्म महाभारत की घटनाओं का उल्लेख करते हैं, वे कथात्मक न होकर केवल प्रतिपाद्य के रूप में परिपुष्टि करते हैं। भीष्म धर्म और स्नेह इन दो पहलुओं पर घूमते रहे। एक ओर दुर्योधन के साथ अपना कर्तव्य पालन करते हैं तो दूसरी ओर युधिष्ठिर के साथ प्रेम का निर्वाह।

भीष्म ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाले थे, वे परम वैरागी थे, जिन्हें संसार पाकर भी पा न सका, जिन्हें संसार ने पाकर भी खो दिया। भीष्मने धर्म के लिए राज्य को त्याग दिया था और पांडवों के प्रेम के खातिर उन्होंने अपने प्राणों को त्याग दिया था, संसार में भीष्म के समान कोई भी पुरुष पराक्रमी नहीं होगा।

बाणों की नौक पर भीष्म थके हुए हाथी, पंख टूटे हुए गरुड़ के समान व्याकुल शेष नाग के समान शैय्या पर लेटे हुए थे। शक्तिशाली जीवन का भारी बल और भार मृत्यु पर डाले हुए वे मृत्यु को दबाए हुए जीवन के संभाले हुए थे।

पितामह कहते हैं कि कोई किसी का न्याय छीन लेता है, तो वह युद्ध को बुलावा भेजता है। युधिष्ठिर अपने न्याय को प्राप्त करना पाप नहीं हैं जो पाप को स्वीकारते हैं, उन्हें नरक प्राप्त होता है। जो उनकी तलवार को स्वीकारता है वह पाप नहीं है।

स्वाभाविक रूप से कोई लड़ना नहीं चाहता वे मनुष्य स्वयं मरना नहीं चाहता और न किसी का मारना चाहता है, वह तो नकली शांति को भी तोड़ना-नहीं चाहता, जहाँ तक उससे हो सके वह प्रेम और शांति को बनाए रखने का प्रयास करता है। यह शांति केवल मनुष्य को रोक पाती है, पापी-दुराचारी, राक्षसों को बंद नहीं करती। राक्षस कभी शांति प्रिय मानव को पहचानते नहीं। वह विनयता को नीति को हमेशा कायर मानते हैं।

समय जैसे-जैसे बीतता जाता है वैसे-वैसे परिस्थिति भयंकर बन जाती है। अन्याय की शृंखला कठोर बन जाती है। एक दिन भयंकर महाविस्फोट हो जाता है। मानव हाथों में प्राण लेकर राक्षसों के ऊपर टूट पड़ता है। तुम यह मत समझो कि युद्ध के दो ही पक्ष होते हैं, पराजित और विजयी दोनों पक्षों के कारण ही युद्ध में महानाश होता है। दो पक्षों की शत्रुता के कारण सारा संसार नष्ट नहीं होता, और संसाद दो चार व्यक्तियों के प्रयत्न से नष्ट भी नहीं होता।

युधिष्ठिर! ज्वालामुखी अचानक नहीं फूटती, बिना मेघ से कभी बिजली नहीं गिरती? ज्वालामुखी भी तभी उभर कर फूटता है जब धरती के भीतर ही भीतर आग जमा हो जाती है, बिजली भी आकाश में तभी चमकती है जब बादल धिर जाते हैं।

महाभारत का युद्ध केवल दुर्योधन और पांडवों के दो दिलों का नहीं था, उससे तो अनगिनत व्यक्तियों के क्रोध और द्वेष की आग एकत्रित थी। यह केवल कुरुक्षेत्र के कुल का पारस्परिक संघर्ष नहीं था, यह संघर्ष तो सारे भारत के राजाओं का संघर्ष था।

युगों-युगों से संसार में शत्रुता के विष की हवा बहती चली आ रही थी। यह धरती चुपचाप सहती आ रही थी। सभी लोग अपनी शत्रुता चुकाने के लिए तैयार थे, सब युद्ध का कारण खोजते हुए शांत थे।

कोई किसी की शूरता से जल रहा था, कोई किसी की क्रूरता से, कोई किसी दूसरे राजा की उन्नति देखकर जल रहा था और बदला लेने के लिए अपने मन में क्रोधाग्नि को लिए जी रहा था।

कर्ण दुर्योधन के प्रति था इस कारण युद्ध में नहीं आया था, वह तो अर्जुन को मारने की प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए युद्ध को तैयार हो गया था। द्रुपद द्रोणाचार्य से अपने बैर का बदला लेना चाहता था। शकुनि अपने पिता का ऋण चुकाना चाहता था और गुरुकुल को नष्ट करना चाहता था। दुर्योधन से शकुनि को प्रेम नहीं था, शकुनि तो प्रेम के जाल में फँसाकर अपना स्वार्थ पूर्ण करना चाहता था और द्वेष को हमेशा-हमेशा भडकाए हुए रखना चाहता था। हर व्यक्ति के मन में शत्रुता का विष भरा हुआ था। इसी कारण सभी युद्ध के लिए उतावले हो गये थे।

जो राजा श्रीकृष्ण के सुधारों से प्रसन्न नहीं थे, वे सब क्रोधित होकर एकत्र हो गये थे। शिशुपाल का वध होने पर भी उनका स्वाभिमान नष्ट नहीं हुआ था। वे तो दुगनी शक्ति से आगे बढ़ते चल रहे थे। परस्पर के द्वेष और कलह के कारण वैर भावना से विभाजित होकर कभी के दो दिलों में बाँटे हुए थे। लोग अपने हृदय में वैर भावना की अंगार लेकर खड़े थे, बाण को धनुष पर चढ़ाकर म्यान में तलवार लेकर दो दिलों में लोग तैयार थे।

महाभारत का युद्ध महाभारत से पूर्व ही चल रहा था, उसे तुम्हारे राजसू यज्ञ ने पूरा किया। मनुष्य की इच्छा और भाग्य उसे कुछ और फल देता है। पृथ्वी की यह विचित्र गति है कि वह अमृत के पेड़ से विष का फल उगाती है। भगवान कृष्णने राजसूय यज्ञ द्वारा तुम्हें देश का एक मात्र स्वामी बनाकर एकता निर्माण करने का उपाय सोचा था। परंतु इस राजसू यज्ञ का परिणाम अलग ही निकलता। ऐक्य के स्थान पर देश में द्वेष की आग अधिक धधक उठी। पराजित राजाओं के मन में द्वेष पैदा हो गया था। वे भगवान के निश्चल उद्देश्य को समझ नहीं पाये, उन्हें तो एकमात्र इन्द्रप्रस्थ की शक्ति दिखाई देती थी। जो पूजा के लायक है उसे पूजा के लायक नहीं मानना इसी कारण बाधा उत्पन्न होती है, उसके कारण व्यक्ति का घमंड और मूर्खता है।

इन्द्रप्रस्थ का मुकुट समग्र भारत का भूषण था, उसे प्रणाम करना कोई दोष नहीं था। इस नमन से बहुतों को घृणा हुई और उनकी भ्रमित बुद्धि में अहंकार उत्पन्न हुआ, युधिष्ठिर की अधीनता स्वीकार करना राजा अपना अपमान समझ रहे थे। अपमान वाले राजाओं को राजसूय

यज्ञ रणभूमि की भांति दिखाई दिया उन्हें यह यज्ञ अपने विस्तार को बढ़ाने वाले राजा के छल के समान जान पड़ा। जा राजा अपने राज्य का विस्तार करना चाहते थे।

हे धर्मराज! कोई भी अपना अहंकार खोना नहीं चाहता और न किसी ऊँची सत्ता के सामने झुकना चाहता है। सभी राजा तुम्हारे झंडे के नीचे प्रेम भाव से नहीं आये थे, कुछ भक्ति से तो कुछ तलवार के डर से आये थे मगर भाव जो भी हो, सबके मन में एक ही बात थी युधिष्ठिर को प्रणाम करना उसकी अधीनता स्वीकार करने में उनके राज्य की सुरक्षितता नहीं रह पाती थी। इस वंदना में राजाओं का मान नहीं रहता था उन राजाओं को ऐसा प्रतीत होता था कि सबके सिर पर दासता मढ़ी जा रही है और राजसूय यज्ञ के द्वारा इन्द्रप्रसथ के साम्राज्य का विस्तार किया जा रहा है। उन्हें ऐसा लगा कि राजसूय यज्ञ के असंख्य राजाओं के अपार हाथियों के, वीरों के और बल वैभव वाले पुरुषों के अहंकार को नष्ट कर दिया है। यह सच है कि तुमने नम्रता, विनम्रता, समानता और अपनी सुंदर वाणी से सभी राजाओं को मन में सम्मानित किया था। परंतु स्वतंत्रता इसका मोल नहीं चुका सकती, मन में स्वतंत्रता की दहकने वाली आग की भावना रूक नहीं सकती। कोई निर्बल राजा ही, जो मूर्ख होता है यह प्रेम प्रार्थना से, मधुर वचनों से शत्रु के आलिंजन से संतुष्ट को जाता है। दूसरे इसका बदला लेना चाहते हैं।

चतुर शत्रु विजयी से मिलकर उसके भय तथा संदेह को शांत कर देती है, परंतु अपना हृदय शत्रु के हाथों में नहीं पड़ने देता। सभी राजा राजसूय यज्ञ में प्रेम की भेट या संतुष्ट होकर नहीं गये थे वे इन्द्रप्रस्थ में यज्ञ की समाप्ति के बाद अपने मन में कुछ और भाव लेकर गये थे।

हे धर्मराज! युधिष्ठिर तुम्हें यज्ञ समाप्ति के बाद व्यास की भयानक भविष्यवाणी याद है? उन्होंने कहा था – “तुम्हारे यज्ञ के कारण आकाश में क्रूर ग्रहों का मिलन हो रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि संसार में भयानक महासंग्राम होने वाला है। तेरह वर्ष शान्ति बनी रहेगी, और एक दिन विस्फोट होगा और महाभयंकर लड़ाई शुरू होगी।”

भयंकर नाश होगा, समय विद्रोह को जन्म देगा। धरती पर प्रलयकाल प्रकट होगा और चारों ओर हा-हा-कार मच जायेगा। यह भविष्यवाणी अनुमान नहीं था। यह तो अंतर्ज्ञानी के वचन-था जो भली-भांति जानते थे कि एक एक पल पृथ्वी किधर जा रही है। राजसूय यज्ञ से सब सुखी थे, परंतु केवल व्यास का मन ही दुःखी था। वही जानते थे कि हवन-कुंड सै कौन सा अनल (आग) प्रकट होगा। इसीलिए व्यास ने भरी सभा में सभी का सावधान किया था। हर पल संयम रखने का शुभ संदेश दिया था, क्योंकि आगामी महाभयंकर युद्ध को रोका जाए। किन्तु अहंकार और मोह में डूबा हुआ व्यक्ति संयम से काम नहीं लेता। कल की आने वाली विपत्ति से अपने अज्ञान के कारण उसकी चिंता नहीं करता।

यज्ञ समाप्त होकर एक वर्ष भी नहीं हो गया कि युद्ध की गर्जना सुनाई पड़ने लगी। इन्द्रप्रस्थ पर अचानक विपत्ति के बादल मंडराते हुए नजर आने लगे। किस को पता था। कि खेल-खेल में इतना विनाश हो जायेगा? और भारत को इतने दुर्भाग्य के दिन देखने को मिलेंगे?

हे धर्मराज! दुर्योधन के मन में यह ज्वाला नयी नहीं थी, यह ज्वाला तो उसके मन में वर्षों से उबल रही थी। अर्जुनने नकली पक्षी पर निशाना लगाकर उसे परीक्षा के स्थान पर मारा था, उसी दिन से दुर्योधन के मन में ईर्ष्या की आग ने जन्म लिया था। वही आग, विष बनकर वंश

को नष्ट करने निकली। पहले वह लाक्षा-गृह के रूप में प्रकट हुई, वही ईर्ष्या शकुनी के जुबे की छल बनी और पांडवों को उसी के कारण वन जान पड़ा। भरी सभा में द्रौपदी की लाज नहीं लूटी थी बल्कि ईर्ष्या की आग की रूप में प्रकट हो गयी थी। द्रौपदी की साड़ी जैसे-जैसे खिचती जाती थी। वैसे-वैसे ही ईर्ष्या की लपटें उठ रही थी। ऐसा दिखाई दे रहा था। द्रौपदी के बाल ईर्ष्या के कारण ही खीचे गए थे। द्रौपदी के एकत्रित वस्त्र ईर्ष्या को एकत्रित कर रहे थे। उस दिन तक दुर्योधन की ईर्ष्या छिपी रही और फिर सब को ज्ञान हो गयी। द्रौपदी को उसके तपस्या की शक्ति ने घेर रखा था। उसकी तपस्या का तीव्र आकाश ही उसका आचरण बन गया था।

दुर्योधन की ईर्ष्या नंगी नाच रही थी, और बेशर्मी तथा देश के शक्तिशाली पुरुषों की परीक्षा ले रही थी। चुनौती दे रही थी कि उसे कौन रोक सकता है? तुम उस दिन पराजित हो गये तुम्हारे भुजाओं से खून की धारा फूटी नहीं? तुम अत्याचार को रोक नहीं पाये। पुरुष के यश की पताका उसी दिन जड़ से उखड़ गयी जिस दिन स्त्री ने मनुष्य से निराश होकर देवता को सहायता के लिए पुकारा था। महाभारत का आरंभ भी देश में उसी दिन से होना जरूरी था और तलवार उठाकर तुम्हें इस कलंक को धो डालना जरूरी था। कुल के पवित्र बहू को एक वस्त्र धारण करके महल में खींचकर दासी बनाकर भरी सभा में लाया था यह सब दुष्टता के कारण हुआ था। सभी के सामने दुःशासन ने द्रौपदी के वस्त्र जो लज्जा ढांपती है, उसे खींचा। असमंजस में पड़े हुए भारत के वीर चुपचाप बैठे देख रहे थे, यह कैसा धर्म है? उस दिन की स्मृति से आज भी मेरी छाती क्रोध से जलने लगती है और हृदय के भीतर छूरियाँ चलने लगती हैं।

मेरे आँखों के सामने राजवधू की लाज लूटी गयी और मैं केवल देखता रहा। मुझे धिक्कार है। मैं यह सब देखकर भी जीवित कैसे रहा धरती फट क्यों न गयी और मैं उसमें समा क्यों नहीं गया? आकाश से बिजली क्यों नहीं गिरी, आकाश ने क्रोध से भीषण गर्जना क्यों नहीं की? उस दिन तो प्रलय होना चाहिए था।

मैं संसार में अंगार के समान रहा हूँ किसी के सामने नहीं झुका। मेरी नसों में खून नहीं आग बरसती थी। मैं कभी किसी का अनुचित घमंड सहन नहीं कर सकता था। अन्याय को देखकर मैं शांत नहीं बैठता था। और उस दिन वह कलंक मेरे माथे लगा जो धोने से धोया नहीं जाता, मन ही मन गला फाड़ कर रोने से भी मेरे भीतर की पश्चात्ताप की अग्नि थम नहीं जाती। हे धर्मराज! मैं अपने वीर चरित्र पर यह कलंक लेकर जा रहा हूँ। परंतु तुम्हें उपदेश देकर जा रहा हूँ तुम उसे हमेशा याद रखे।” शूर का धर्म है कि दहकते अंगारों जैसे भयंकर विघ्नों पर से हंसते हुए चले। तलवार की तेजधार जैसी विपत्ति को कुचलते हुए तुम आगे चलते रहो।

शूर का धर्म है – छाती तान कर उस पर तीर खाने का, शूर धर्म वहीं होता है जो हँसते-हँसते जहर पी लेते हैं। वीरों का धर्म है कि अपने हाथों सत्य के लिए संघर्ष की आग जलाना और उसमें प्रसन्नता के साथ अपने प्राणों की आहुती देना। और संसार को बलिदान का आदर्श पाठ पढ़ाना। मनुष्य का सबसे बड़ा कर्तव्य है, उत्साह में रहे और अन्याय की शक्ति को अपनी शक्ति से मिटा डाले। उसे अगर कोई छूना चाहे तो उसे मिटा डाले।

मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म है वीरता, जलाने वाली शक्ति, ईर्ष्या, द्वेष आदि को स्वयं में समेट कर प्रतिशोध की भावना से परिपूर्ण रहे और किसी का स्पर्श भी सहन न करे। वीर व्यक्ति

कभी तर्क-वितर्क में नहीं पड़ते अपना कर्तव्य आँख मूँद कर करते रहते हैं। बलिवेदी पर चढ़कर अपने आपको बलिदान कर देते हैं। वीर व्यक्ति जब बुद्धि की सलाह लेने जाता है तो उसकी वीरता दब जाती है। वह अपमान सहन कर लेती है, वीरता अपना तेज गवाती है। बुद्धि रूपी कलश में शीतल और अमृत जैसे पवित्र विचारों का जल होता है। वह जीने को लाभकारी होता है। परंतु कभी-कभी अनुचित अवसर पर बुद्धि का अमृत जहर बन जाता है। सदा बुद्धि, मान-अपमान का उचित ध्यान नहीं रखती है। बुद्धि अधिक विचार करती है जिससे वीरता का उत्साह टंडा पड़ जाता है। बुद्धि के तर्क-वितर्क ने ही तुम्हारी वीरता की चिनगारी को टंडा किया है इसी कारण तुम्हारी आँखें द्रौपदी का वस्त्रहरण देखती रही।

हे युधिष्ठिर। इस तर्क-वितर्क के कारण ही मैं दुविधा में पड़ गया था और कायर बनकर बैठा था। जब मैं कायरता से बाहर निकला तब समय हाथ से निकल गया था। मनुष्य जवानी में हमेशा सीना तान कर चलता है और उसमें शक्ति कम होने पर वह वृद्धा अवस्था की ओर आ जाता है तो बुद्धि का दास बन जाता है।

जवानी का उच्छंद प्रवाह देखकर बुद्धि कुछ उदास हो जाती है और मौन साधे एक किनारे खड़ी रहती है। बुद्धि डरती है कि कहीं जवानी के जोश में तिनके के समान बह न जाये। इस कारण वह जवानी के जोश की उस बाढ़ से डरकर अपनी सीमाओं में स्वयं को छिपाती है।

यौवन बिना किसी उलझन, बाधा और बिना कोई साधनाके खिल उठता है। यौवन के जोश में व्यक्ति किसी बाधा की परवाह किए बिना अपने लक्ष्य प्राप्ति के लिए तल्लीन बना रहता है। उसे सारे संसार में एक अनोखी शोभा के ऊपर अनुपम आनन्द क्रीड़ा करता दिखाई देता है और बुद्धि नित ताकते खड़ी रहती है कि जवानी का ज्वार कम हो जाए और उसे मैं दमा लूँ। यही सही है कि जब जवानी का जोश कम हो जाता है तो शरीर सुस्ताने लगता है।

व्यक्ति जब शिथिल हो जात है तब बुद्धि उस पर अपना फंदा फेकता है। उसमें मनुष्य फस जाता है। और नयी-नयी उलझने निर्माण होती है। मनुष्य सोचने लगता है कि मुझे अन्यायी को क्षमा कर देना चाहिए, या उससे बदला लेना चाहिए? अन्याय के रोग का क्या इलाज है? इसमें स्वयं घुट-घुट कर मरना चाहिए था उसे नष्ट करना चाहिए, कौन-सा उपाय है इस पर।

शक्ति-श्रेष्ठ है या बुद्धि। शत्रु के विरुद्ध तलवार उठानी चाहिए या शत्रु को मनाना चाहिए? खून बहाने पर विजय प्राप्त होगी? फिर विजय श्रेष्ठ या करुणा से उज्ज्वल पराजय कुछ समझ में नहीं आता।

आत्मा का पवित्र ज्ञान या मन का उत्साह दोनों में कौन पवित्र है? शक्तिहीन वृद्ध में ज्ञान कल्याणकारी है या जवानी का कार्य हितकारी है। जिसे आयु कहते हैं, वह जीवन की घोर थकावट है। शक्तिशाली पुरुष भी शक्तिहीन होने पर वह आदर्शों के सहारे रहने लगता है और दूसरों के उपहासों को सहन करता है।

वृद्ध अवस्था में व्यक्ति बुद्धि के अधीन हो जाता है और उसी चक्र के ऊपर घूमता चलता है। अपनी शंकाओं का निवारण वह कर नहीं पाता। समय के अनुसार वह कार्य नहीं कर पाता। तब एक समय वीरता की शक्ति को लूट लेता है और फिर ग्लानि में आयु डूब जाती है उसके पास रोने पछताने के सिवा कोई चारा नहीं होता।

हे युधिष्ठिर! मैं दुर्योधन के घर तर्क-वितर्क के कारण ही पड़ा रहा। मेरी वीरता हड्डियों के पिंजरे में बंदी होकर तड़पती रही। उससे न कौरवों का हित साध्य हुआ न पांडवों का। मुझे दृढ़ के बीच उलझनों ने वृद्ध अवस्था के कारण रखा। मुझे धर्म, स्नेह दोनों से प्रेम था और निर्णय लेना कठिन था और मैंने इसमें एक को शरीर और दूसरे को हृदय दिया था और जब मेरे मन में दुविधा दूर हो गई तब मुझे जीवन का ज्ञान हुआ और मेरे थके-हारे शरीर पर प्रेम की विजय हो गई। इसी कारण मैं अर्जुन से लड़ नहीं पाया और धर्म पराजित हुआ, प्रेम के विजय की शहनाई बजने लगी। मेरा शरीर भी उसे मिला जिसे मैंने हृदय दिया था।

हे युधिष्ठिर! भीष्म अर्जुन के बाणों से धराशायी नहीं हुआ, उसकी तो आयु ढल चुकी थी। मैं वृद्ध हो गया था? परंतु जब मैं रणक्षेत्र में उतरा तब वृद्धावस्था में भी यौवन जैसा जोश आ गया था।

मैं तुम्हारे प्रति हृदय से बंधा हुआ था और शरीर से कौरवों की ओर से लड़कर मैंने अपना कर्तव्य पालन किया, परंतु मैं हृदय पांडवों को देकर ही “कुरुक्षेत्र” के युद्ध में आया था। मैं समझा था कि कर्तव्य का विभाजन करके मेरे मन का संघर्ष समाप्त हो गया। परंतु मैं यह नहीं जानता था कि प्रेम का बंधन कर्तव्य से शक्तिशाली होता है। भीष्म कहते हैं कि मैं कौरवों की ओर से क्यों लड़ता रहा धर्म के डर से मैं कर्म में लीन था। कौरवों के पक्ष में युद्ध करने में तत्पर नहीं था। एक ओर मुझे प्रेम बलिदान करने की प्रेरणा देता था।

धर्मराज। मुसीबत के समय मनुष्य का बनावटी पर्दा हट जाता है और मनुष्य वास्तविक रूप धारण करता है। जब युद्ध का आरंभ हो गया तो मेरे जीवन की भूली सी कहानी फिर ताजी हो गयी। जवानी का दबा जोश प्रेम की पूजा करने के लिए व्याकुल हो रहा था। मेरी बुद्धि का अज्ञान दूर हो गया, कर्तव्य का झूठा पर्दा मेरी आँखों से दूर हो गया और मेरा शरीर, हृदय से अधीर होकर पुकारने लगा। “हे अर्जुन तुम अपना सब कुछ लो और मुझे मार कर गिरा दो, अब मुझे विरह दुःख सहा नहीं जाता। मुझे प्रेम के घर पहुंचा दो।”

ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा जिस दिन मैंने ली थी उसी दिन प्रेम की धारा रुक गई थी। कुरुक्षेत्र में वह प्रेम के रूप में संचारित हुई। मेरे जीवन में कभी कोमल वायु बही नहीं, जिसमें मैं उदीप्त होकर मेरे मन का कुंज विचलित हो उठे। विविध इच्छाओं में छिपकर कोई प्यार का शब्द नहीं बोला।

मैं कभी किसी को अपने प्रेम का फूल देकर सम्मानित नहीं कर सका। इतना ही नहीं मैं अपने जीवन में किसी को कुछ समर्पित कर नहीं सका। मेरे मन की हर अतृप्त इच्छा मन के किसी कोने में छुपी थी। वह रणक्षेत्र में खिलकर आदर्श की बलिवेदी पर चढ़ी और प्रत्येक घाव मधुर पीड़ा बन कर बोला रहा है। मैं यह नहीं जानता था कि मेरे भीतर माया की शक्ति का विकास हो रहा है, यह स्नेह की शक्ति गुप्त ज्योति की भांति चल रही है। मैं दुर्योधन का सेनापति बनकर युद्ध में लड़ने आया था, कुरुक्षेत्र में प्रेम पर बलिदान करने नहीं आया था।

यह सच है, मैं अर्जुन के धनुर्विद्या की कुशलता से प्रभावित था और उसे देखकर मेरे मन में आनंद की लहरें उभर उठती थी। मैं तो मन से पांडवों का हित चाहता था, परंतु मैं दुर्योधन के हाथों में शरीर को बेच चुका था। न्याय की दीवार तोड़कर प्रेम ने अपना अधिकार पा

लिया, और मैंने जिसे मन दिया था उसने ही शरीर को पा लिया। मुझे पहले ही प्रेम की शक्ति का ज्ञान हो जाता तो शायद देश को यह महाभारत का दिन न देखना पड़ता।

हे धर्मराज! मैंने अपने कोमल भावों की अवहेलना करके देश को युद्ध की खाई में डाल दिया था। जीवन के यौवन के दिनों में प्रेम का अंकुर स्वयं फूटता है, मैंने कठोर ब्रह्मचर्य का व्रत धारण कर लिया, और प्रेम के भावों को सदैव अपने जीवन में प्रविष्ट होने नहीं दिया। मुझे यह अपेक्षा नहीं थी कि कर्तव्य की अपेक्षा प्रेम महान और आकर्षक होता है, कोमलता ब्रह्मचर्य से अधिक प्रकाशमान और कांतिमान है।

हाथ में धनुष्य और पीठ पर तरकस और मन में नीति ज्ञान था। इसके अतिरिक्त मैं किसी बात को महत्त्व नहीं देता था। जब भी मेरे मन में नया अपरिचित भाव उभर आता तो उन्हें नीति के सामने झुकना पड़ता था। मेरा हृदय हमेशा दुर्योधन के कर्मों से दुखी रहता था, परंतु उसे रोकने में मैं विवश था। मैं कुछ कर नहीं पाता था। मैं नीति के हाथों में अनुशासन देकर अपने ही घर में पराये की तरह रहता था। मेरे जीवन पर बुद्धि का शासन था, उसके पीछे चलने वाला केवल हृदय था। मुझे हृदय को कहने का डर लगता था। मेरा हृदय यह की कह न सका- “हे भीष्म”! तुम कहां बहे जा रहे हो? न्याय के रक्षक होते हुए भी सब सहन करते जा रहे हो।

तुम मन से प्रेम पांडवों से करते हो और कौरवों की सेवा शरीर से करते हो। इस बिखरी हुई अवस्था में तुम्हारा कौन सा काम पूर्ण हो जायेगा। किन्तु मुझे बुद्धि ने भ्रमित कर दिया था, मेरा स्वत्व छीन लिया और हृदय की वेदी पर चढ़ा दिया। मेरी बुद्धि यह सपना देखती थी कि इन दोनों की शत्रुता अपने आप समाप्त हो जायेगी और कभी-कभी ऐसा कहती थी कि इस संसार में कौन अपना कौन पराया है। मेरी बुद्धि कहती थी कि “तुमने यदि क्रोध किया तो बहुत से लोगों का धैर्य टूट जाएगा। देश में क्रांति हो जायेगी, और फिर न्याय की सारी परम्परा समाप्त हो जायेगी।”

कभी मेरी वीरता को बुद्धि ने रोका, कभी वन जाने से, सन्यास लेने से रोका और मुझे मेरा इच्छित फल प्राप्त करने से रोका। आज मैं सोचता हूँ कि मैंने अपनी बुद्धि का कहना न मान लिया होता तो मैं न्याय का स्वरूप पहचान जाता।

मैं राजनीति के दोषों को प्रेम के जल से धो पाता और दंड-नीति की पावन दया से मिलाता। मैं हृदय के विचारों की प्रधानता देता, तर्क-वितर्क को दूर रखता। मंत्री के आसन को त्याग कर दुखी व्यक्ति का सच्चा साथी बन जाता तो शायद राजद्रोह की पताका लेकर उसका प्रचार किया होता, न्याय को साथ लेकर मैंने दुर्योधन को चुनौती दी होती तो डरपोक दुर्योधन संभल जाता और भारत भूमि युद्ध की आग में नहीं फंसती। पर अब सब कुछ समाप्त हो चुका है। बीती हुई बातों को छोड़ दो और नये युग को आने दो। हे युधिष्ठिर! मुझे मेरी शांतिमय यात्रा से पहले सब फल प्राप्त हो गये हैं। मुझे मेरा धर्म प्राप्त हो गया, क्योंकि मैंने अपना कर्तव्य पालन किया है, पांडवों का प्रेम भी प्राप्त किया है। इस प्रकार धर्म और प्रेम का आधार मुझे मिल गया है। अब मेरी कोई इच्छा अपूर्ण नहीं रही है।



कुरुक्षेत्र शीर्षक की सार्थकता

कुरुक्षेत्र के शीर्षक की सार्थकता देखने से पहले हमें यह देखना आवश्यक है कि कौन-सा काव्य श्रेष्ठ होता है? क्यों होता है। भारतीय आचार्यों ने कहा है कि जो काव्य आनंद देता है और मानव की चेतना को जागृत करता है उसे ही श्रेष्ठ काव्य माना जाता है। जिस काव्य से मानव की चेतना जागृत हो, इतना ही नहीं उस काव्य में सरसता है या नहीं उस काव्य में सरसता है या नहीं इस बात पर भी काव्य को श्रेष्ठ माना जाता है।

काव्य वही श्रेष्ठ होता है जो मानव को रस से आर्पित कर सके और उसे कुछ न कुछ करने के लिए प्रेरित कर सके। प्रेरित करना ही मानव के चेतना का विकास करना है। ये सभी लक्षण “कुरुक्षेत्र” अंतर्गत प्राप्त होते हैं। इस कारण कवि ने इस खंडकाव्य का नाम कुरुक्षेत्र रखा है। वह सार्थक है, क्योंकि इस काव्य की रचना तब हुई थी जब दूसरा महायुद्ध समाप्त हुआ था और उस समय महायुद्ध के भयंकर परिणाम जो सामने आये थे उसका चित्रण कवि ने इस काव्य के द्वारा समाज के सामने रखा है।

कुरुक्षेत्र मानव के मन को जागृत करता है, अगर कुरुक्षेत्र में मानव को जागृत करने की क्षमता नहीं होती तो वह एक केवल मनोरंजन-काव्य या ज्ञान का श्रेष्ठ काव्य बना होता परंतु कुरुक्षेत्र में यह बात नहीं है। कुरुक्षेत्र में देश काल परिस्थिति का मान कवि ने रखा है। इसी कारण कुरुक्षेत्र यह काव्य श्रेष्ठ सिद्ध होता है। कुरुक्षेत्र से हमारी संस्कृति का ज्ञान मिलता है, भारतीय संस्कृति मानवतावादी है। भारतीय संस्कृति हर प्रांत में समान है भले ही हर प्रांत का पहनावा अलग हो, भाषा अलग हो पर सभी भारतीयों के मन एक हैं यह अखंडताका प्रतीक है। इसी कारण भारत की संस्कृति प्रेरणादाई है यही प्रेरणा कुरुक्षेत्र के माध्यम से भारतीय समाज को दिनकर देते है। कुरुक्षेत्र समग्र मानव समाज के सामने प्रश्नचिन्ह खड़ा करता है क्या युद्ध से हमें जो शांति स्थापित करना चाहते हैं वह शांति प्रस्थापित हो सकती है? आज तक आदिकाल से जा युद्ध होते आये हैं ये युद्ध तो शांति प्रस्थापित करने के प्रश्न को लेकर ही तो हुए, फिर भी शांति प्रस्थापित नहीं हुई। यह जानते हुए भी मानव एक युद्ध समाप्त होने के बाद दूसरे युद्ध की तैयारी करने लगता है। दिनकर यह प्रश्न मानव समाज के सामने भीष्म और युधिष्ठिर के माध्यम से रखते है।

युधिष्ठिर का मन युद्ध के प्रसंगों को याद करके भयभीत होता है। कवि दिनकर को यह युधिष्ठिर की भिरुता द्विविधा में डालती है। कवि अपनी इस द्विविधा को पाठकों के सामने प्रश्न के रूप में चित्रित करता है।

“वह कौन रोता है वहाँ इतिहास के अध्याय पर
जिसमें लिखा है नौजवानों के लहू का मोल है।”

दिनकर जी कुरुक्षेत्र में हर सर्ग में युधिष्ठिर और भीष्म के मन की शंका को प्रश्न के रूप में चित्रित करता है। कुरुक्षेत्र में कवि ने प्रश्नात्मक को सर्वाधिक सफलता से चित्रित किया है। कुरुक्षेत्र का समग्र अध्ययन करनेके पश्चात ऐसा लगता है कि कुरुक्षेत्र विचार प्रधानकाव्य है वह मनोरंजन का काव्य नहीं या केवल बौद्धिक काव्य नहीं। दिनकर छायावाद के अंतर्गत आने वाले कवि हैं छायावादियों का काव्य प्रश्नात्मक है। परंतु दिनकर के कुरुक्षेत्र में प्रसाद की कामायनी, पंत का पल्लव, निराला की अनामिका और महादेवी की दीपशिखा, कुरुक्षेत्र मानव के सामने कई प्रश्न खड़ा करता है इसी कारण दिनकर के “कुरुक्षेत्र” इस खंडकाव्य का शीर्षक कुरुक्षेत्र में दिखाई देता है।

हिन्दी साहित्य में कुरुक्षेत्र का अपना स्थान प्रस्थापित हो चुका है। कुरुक्षेत्र केवल प्रश्नकाव्य ही नहीं वह समस्या प्रधान काव्य भी है। आदिकाल से चलते आ रहे, युद्धों की समस्याओं को कुरुक्षेत्र चित्रित करता है। युधिष्ठिर के द्वारा कवि ने उसके हृदय और बुद्धि के द्वंद्व द्वारा बुद्धिवाद को छठे सर्ग में चित्रित किया है।

“किन्तु है बढ़ता गया मस्तिष्क ही निशेष,
छूटकर पीछे गया है रह हृदय का देश
पर मानता नित्य नूतन बुद्धि का त्यौहार
प्राण में करते दुखी हो देवता चीत्कार।”

कुरुक्षेत्र इसलिए श्रेष्ठ नहीं है कि वह महाभारत की कथा को दुहराता है। दिनकर जी राष्ट्र कवि हैं राष्ट्र की आत्मा उनकी आत्मा है, इसी कारण कवि ने इस काव्य में समाज के विकास को संघर्ष के रूप में बुद्धिगत होता हुआ बताया है।

दिनकर के ऊपर वर्तमान युद्ध का प्रभाव पड़ा था। महाभारत के परिप्रेक्ष में उन्होंने वर्तमान संघर्ष की समस्या को देखाने का प्रयास किया है। युद्ध की समस्या के साथ-साथ उन्होंने समाज की अकर्मण्यता, असमानता, अन्याय तथा भाग्यवाद जैसी समस्याओं पर भी विचार किया है। महाभारत की कथा दिनकर के काव्य की आधार-शिला है। भीष्म उनका माऊथ-पीस है।

कुरुक्षेत्र में राष्ट्रीय भावना है। तारकनाथ बाली के मतानुसार- “कुरुक्षेत्र” के रचनाकाल में यह समस्या थी – पराधीनता की समस्या – अंग्रेज भारत पर शासन करते हुए उसे चूसते जा रहे थे। उन्होंने भारत का वैभव लूट लिया था। उन्होंने भारतीय संस्कृति को, कलंकित करने की चेष्टा की थी। उन्होंने सारे भारत के धन को लूट लिया था। जनता का शोषण करने के उन्होंने सारे भारत पर अपने शासन को स्थायी बना देना चाहते थे। अंग्रेज उनके प्रति होने वाले विद्रोह की शांति में बाधा समझते थे यह शांति कृत्रिम थी और इसी के विरोध में लड़ना भारतीयों का कर्तव्य है या उस शांति को तोड़ना भारतीयों का कर्तव्य था ऐसा दिनकर मानते हैं। युधिष्ठिर भी शांति तलवार के बल पर प्रस्थापित कर चुके थे। कुरुक्षेत्र द्वारा दिनकर अंग्रेजों के शांति के विरोध में भारतीय जनता को लड़ने के लिए प्रेरित करते हैं।

उपरोक्त समग्र विवेचन को देखने के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि दिनकर आशावादी कवि है। वर्तमान समय में आशा की किरण तिमिर जाल में फंस गई है। किन्तु कवि को विश्वास है कि आशा का प्रदीप अवश्य पुनः जल उड़ेगा। कवि की आशा वर्तमान युग में पूर्ण होगी।

आदिकाल, वर्तमान और भविष्यकाल का समग्र चित्रण कुरुक्षेत्र में चित्रित हुआ है। इस कारण आदिकाल, वर्तमान और भविष्यकाल का “कुरुक्षेत्र” एक चित्र काव्य है। इस कारण “कुरुक्षेत्र” का शीर्षक सार्थक है।



कुरुक्षेत्र की प्रेरणा-स्रोत

कलिंग विजय :

मनुष्य के प्रत्येक कार्य के पीछे किसी न किसी की प्रेरणा होती है। कवि, लेखक, वैज्ञानिक को लें तो उसकी भी रचना या शोध के पीछे किसी ना किसी की प्रेरणा होती है। कहा जाता है कि : “रामायण” जो वाल्मिक द्वारा लिखा गया है उसके पीछे भी नारदमुनि की प्रेरणा रही। या हम तुलसीदास द्वारा लिखे “मानस” को लेगे तो “मानस” लिखने की प्रेरणा तुलसी को अपनी पत्नी “रत्नावली” द्वारा मिली। अगर रत्नावली, तुलसी को ये शब्द न कहती तो मानस की रचना नहीं होती-

“धिक! धाए तुम क्यों अनाहत
धो दिया श्रेष्ठ कुल धर्म धूत,
राम के नहीं काम के सुत कहलाए
हो बिके जहर तुम बिना दाम,
वही नहीं और कुछ चड़े चाम
कैसी शिक्षा कैसा विराम पर आये।”

अतः रामचरित मानस की रचना का श्रेय पूर्णतः रत्नावली को ही देना चाहिए। भगवान बुद्ध ने अगर बुद्धत्व प्राप्त किया है तो अपनी पत्नी यशोधरा के त्याग के कारण। जगत का दुःख निवारण करने के लिए जो उन्होंने शांति का मार्ग अपनाया। वह प्रेम, वृद्ध, रोगी, मृत्यु को देखने के पश्चात अपना राजसी वैभव छोड़कर सन्यास ग्रहण किया और शांति का मार्गदाता बने। इसी महान, शांती दूत के मार्ग पर चलने वाले “सम्राट अशोक” को अपनी कविता का विषय बनाकर कवि “कलिंग विजय” की रचना कर रहा था, उसी समय कवि दिनकर को युद्ध के विनाश के कारण प्राप्त हुए और कवि ने “कुरुक्षेत्र” की मुख्य प्रेरणा भूमि हम “कलिंग विजय” को ही मानेंगे। कवि ने महाभारत का आधार मात्रा लिया है “कुरुक्षेत्र” की रचना भगवान व्यास के अनुकरण पर नहीं है और न ‘महाभारत’ को दुहराना मेरा उद्देश्य था। मुझे कुछ कहना था वह युधिष्ठिर और भीष्म का प्रसंग उठाये बिना भी कहा जा सकता था, किन्तु तब यह रचना शायद प्रबंध रूप में नहीं उतरकर मुक्तक बनकर रह गयी होती। तो भी, यह सच है कि इसे प्रबंध के रूप में लाने की मेरी कोई निश्चित योजना नहीं थी। बात ता यों हुई कि पहले मुझे अशोक के निर्वेद ने आकर्षित किया और ‘कलिंग विजय’ नामक कविता लिखते-लिखते मुझे ऐसा लगा, मानों युद्ध की समस्या मनुष्य की सारी समस्याओं की जड़ हो।”

कवि को युद्ध के उपरांत होने वाले श्मशान शांति को देखकर ही ऐसा लगता है-

“ युद्ध का परिणाम ?
 युद्ध का परिणाम हासत्रास
 युद्ध का परिणाम सत्यनाश
 रुण्ड-मुण्ड-लुटन, हिंसन, मीच।
 युद्ध का परिणाम लोहित कीच।”

कवि दिनकर के ‘कलिंग विजय’ में युद्धोत्तर समर-भूमि में अशोक की आन्तरिक वेदना प्रस्फुटित हुई थी। बुद्ध तथा गांधी के दर्शन के आधार पर युद्ध विरोधी स्वर मुखरित कर यूरोपीय आदर्श कवि ने इस कविता में प्रस्तुत किया है-

“ शत्रु हो कोई नहीं आत्मवत संसार
 पुत्र-सा पशु पक्षियों को सभी सकृ कर प्यार
 मिट नहीं जाये किसी का चरण चिन्ह पुनीत
 राम में भी में चलू पग-पग सजग संभीत,
 हो नहीं मुझको किसी पर शेष
 धर्म की गुज जगत में घोष
 बुद्ध की जय! धर्म की जय! संघ की जय गान
 आ बसे मुझ में तथागत मारजित भगवान ।”

दिनकर के कुरुक्षेत्र के समान युद्ध का केन्द्र बिन्दु प्रखर नहीं माना, कलिंग विजय में कवि भावनामयता को प्रमुख रूप से चित्रित कर सका है। ‘कलिंग विजय’ में दिनकर को बुद्ध की जय घोष करने पर भी समाधान प्राप्त नहीं हो सका। हिंसा और करुणा का द्वन्द्व कवि के हृदय में सागर की तरह उफनता रहा। इन द्वन्द्व में कवि की दृष्टि महाभारत के अर्जुन और युधिष्ठिर पर पड़ी जो भाव अर्जुन के मन में युद्ध के आरंभ में उठते थे वही भाव युद्ध के पश्चात धर्मराज के मन में उठते हैं। इन भावों को रोकने का काम कवि श्रीकृष्ण के माध्यम से भी कर सकता था। परंतु ‘कुरुक्षेत्र’ को महत्त्व नहीं प्राप्त होता। वही महाभारत की कथा दोहराते जैसा होता, इसी कारण कवि ने युधिष्ठिर के मन में उठे भावनाओं का समाधान करने के लिए पितामह भीष्म का प्रयोग किया है।

महाभारत के ‘शांतीपर्व’ से प्रेरणा

महाभारत के युद्ध समाप्ति के बाद अपने बन्धुओं तथा वीरों का विनाश देखकर उनकी स्त्रियों का करुण विलाप सुनकर धर्मराज का मन शोकाकुल हो उठता है। युधिष्ठिर को युद्ध के पहले अगर सामूहिक विध्वंस की कल्पना होती तो वह कभी भी युद्ध के लिए प्रवृत्त नहीं होते। प्रवृत्त नहीं होते। युधिष्ठिर ने लोभ के वश में आकर अपनी जाति के महान पुरुषों का नाश कर डाला, इसी कारण वे सदा दुःख रहते हैं :-

“इंद तु मै मह दुःख वर्तते हृदिनित्यादा
 कृत्याज्ञातिक्षयमिमं महान्त लोभी कारितम्”

(महाभारत का शांतिपर्व पृ. ३)

इतना ही नहीं अपने स्वयं के बंधु, सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु, द्रौपदी के पांचों पुत्रों को मरवाकर मिली हुई विजय भी मुझे पराजय सी लगती है-

“सौभाद्र द्रौपदेयाश्च घातयित्वा प्रियन्सुतान
जयो यम् याकारो भगवन्प्रति भाति मे।”

(महाभारत का शांतिपर्व पृ. ३)

युधिष्ठिर को अपने बंधु और पुत्र का दुःख नहीं होता, दुःख तो उनका ज्वालाग्नी के समान भभकर कर जब उठता है, महारथी कर्ण उनका बड़ा भाई था। युधिष्ठिर शोक से सन्तप्त होते हैं। युधिष्ठिर अर्जुन से कहते हैं कि तुम अब यह पृथ्वी का राज-धर्म संभालो, मैं सन्यास ग्रहण करके वन में तपस्या के लिए जा रहा हूँ। कौरव हमारे आत्मिय थे, भले ही वह हमसे घृणा करते थे, हम तो मांसलोलुप कुत्तों की तरह राज्य लोभ के पीछे दौड़ते गये। अर्जुन हम कौरवों को न जीत सके ना हमें कौरव। हम जीत कर भी पराजित लग रहे हैं, मुझे राज्य की अब लेशमात्र कामना नहीं है।

धर्मराज के सन्यास की भावनाओं को देखकर सभी मन ही मन घबराते हैं। द्रौपदी, अर्जुन, भीम, नकुल-सहदेव सबने उन्हें समझाया। द्रौपदी युधिष्ठिर से कहती है कि नपुंसक व्यक्ति पृथ्वी, स्त्री अथवा धन का भोग नहीं भोग सकता। मैत्री, दान, तप, ज्ञान, ब्राह्मण के कर्म, तो दुष्टों को दंड देना, सज्जनों की रक्षा करना, युद्ध करना, समाज का रक्षण करना, क्षत्रियों का कर्म है। जिसमें क्षमा, दान, क्रोध भय और अभय को स्थान नहीं होता और इसका जो पालन करता है, वही धर्मात्मा होता है। द्रौपदी युधिष्ठिर को समझाती है कि आपने तो राज्य भीक मांगकर नहीं लिया। क्या तुम्हारी माता कुन्ती ने जो वचन दिया था कि मेरा युधिष्ठिर संसार के सभी वीरों को जीतकर मुझे सुखी रखेगा। क्या तुम अपनी माता का वचन यही सिद्ध करोगे, यदि मैं तुम पांच भाइयों की पत्नी न होती, और किसी एक की पत्नी होती तो सुख की सीमा नहीं होती। आज मैं आपके इस व्यवहार से दुःखी हो रही हूँ। द्रौपदी, अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव के उपदेशों का प्रभाव नहीं पड़ता तो वह उन्हें भगवान व्यास और कृष्ण के पास ले जाते हैं तो व्यास धर्मराज को प्राचीन धर्म के अनेक दृष्टांत उनके सामने रखते हैं, उन्हें शोक मुक्त करने का प्रयास करते रहे हैं।

व्यास, युधिष्ठिर को पाप से प्रायश्चित्त कैसे होगा यह समझाते हैं। व्यास युधिष्ठिर से कहते हैं कि तुम ने तो कोई पाप नहीं किया, तुमने तो अपने क्षत्रिय धर्म का पालन किया है। राज करना तुम्हारा धर्म है। अगर तुम राज नहीं करोगे तो तुम पापी होगे। पाप का प्रायश्चित्त सुनने के बाद धर्मराज हर्षित हो उठते हैं। युधिष्ठिर उसके बाद राज्य किस प्रकार करना? राजधर्म क्या है? यह जानना चाहते हैं। जो राज धर्म की शिक्षा के लिए कृष्ण उन्हें भीष्म के पास जाने को कहते हैं।

इसके उपरांत सभी हस्तीनापुर आते हैं। वहां पर राज्याभिषेक होता है और कृष्ण युधिष्ठिर को राजधर्म का ज्ञान प्राप्ति के लिए बाणों की शैया पर सोये हुए पितामह भीष्म के पास ले जाते हैं। यही महाभारत के शांति पर्व की संक्षिप्त कथा का क्रम है।

दिनकर ने महाभारत के कथानक से केवल दो पात्रों का आधार लिया है, अपनी बात कहने के लिए कवि अपनी बात युधिष्ठिर और भीष्म को लिए बिना भी कह सकता था। परंतु वह प्रबंध काव्य न बनकर मुक्तक बन जाता यह बात भूमिका में ही कही है।

“कुरुक्षेत्र” प्रबंधात्मक काव्य है। कवि ने इसकी रचना के लिए इतिहास का आधार मान लिया है। दिनकर अपने मन में उठे भावों को इतिहास के बिना भी कहते परंतु उसमें काव्यमयता नहीं आती। और “कुरुक्षेत्र” प्रभावशाली काव्य नहीं बनता।

कवि ने इतिहास के पात्र युधिष्ठिर और अर्जुन को कुरुक्षेत्र के मुख्य पात्रों के रूप में लिया है इसका अर्थ यह नहीं कि कवि अवतारवाद या आध्यात्मिकता का प्रचार कर रहा है। कवि तो वर्तमान युग की प्रणालियों तथा वर्तमानयुग के मूल्य के परिप्रेक्ष्य में विघटन का दृश्य चित्रित कर रहा है। युधिष्ठिर ने “कुरुक्षेत्र” में युद्ध के पश्चात के अपराध की भावना को स्वीकारा है। जो वर्तमान समाज में आज होता है। इसी को कवि ने स्थापित किया है।

कवि द्वितीय महायुद्ध के समय युद्ध प्रचार विभाग में काम कर रहे थे, तभी उन्होंने कुरुक्षेत्र लिखा। कुरुक्षेत्र प्रकाशित हुआ १९४६ में, तब यह समय दो विश्व युद्धों का समय था। परंतु यह भी हमें सोचना होगा कि कवि के सामने प्रत्यक्ष युद्ध का दृश्य तो नहीं था। परंतु युद्ध संस्कारों को ग्रहण मात्र किया। उनके सामने सत्य और असत्य, पाप और पुण्य थे। उनके सामने असत्य के पक्ष में रावण और दुर्योधन थे तो सत्य के पक्ष में राम और धर्मराज थे, इसीको कवि ने अपने काव्य का विषय बनाया।

“कुरुक्षेत्र” द्विवेदीकालीन युद्ध इतिवृत्तात्मक न होकर विचारात्मक युद्ध काव्य बन गया है। “कुरुक्षेत्र” प्रागैतिहासिक, पौराणिक अथवा ऐतिहासिक कथा का आधुनिक बोध जरूर है, कवि स्वयं कहता है कि “कुरुक्षेत्र के भीष्म और युधिष्ठिर महाभारत के ही हैं। परंतु इतनी स्वतंत्रता थी कि भीष्म ऐसी कोई बात कर रहे हो जो हमारे अनुकूल पड़ती ही (वर्तमान युग के)। उसी बात का वर्णन नये रूप में चित्रित किया गया है।”

बर्ट्रेड रसेल का प्रभाव

कवि दिनकर पर आधुनिक चिंतकों का भी प्रभाव दिखाई देता है। उनमें गांधी, टाल्सटाय, रसेल का समावेश होता है। कवि केवल मानव-कल्याण के लिए प्राचीन भारतीय संस्कृति के ही प्रति प्रवृत्त नहीं है बल्कि आधुनिकता को भी मानता है।

कुरुक्षेत्र में युद्ध का वर्णन कवि ने किया है। सामान्य निति जो चित्रित है यह रसेल के प्रभाव का कारण है। दिनकर ने कुरुक्षेत्र लिखते समय रसेल के साहित्य का अध्ययन किया था। रसेल निर्भीक और स्वतंत्र प्रकृति के लेखक हुए हैं। वह दो प्रकार के विचारक हैं एक तार्किक और दूसरे मानव शुभ चिंतक के रूप में। दिनकर ने उनके जिन विचारों को ग्रहण किया है। वह है मानव का शुभचिन्तक रूप।

जनता को सुख शिक्षा से प्राप्त नहीं होता सुख प्राप्ति के लिए संघर्ष करना पड़ता है तभी सुख प्राप्त होता है। यह आज के आधुनिक पूँजीवादी का प्रमाण है। इसी बात को पितामह भीष्म युधिष्ठिर को समझाते हैं। भीष्म की बात हमारे समाज के अनुकूल पड़ती है उसको कवि ने चित्रित किया है।

“कुरुक्षेत्र” में कवि को कर्मबद्ध मानव की भावना को सफल बताया है जो मानव की आदर्श प्रेरणा होती है। दिनकर कुरुक्षेत्र के माध्यम से भीतर के देवता की चीख कवि ने कुरुक्षेत्र की रचना की है जिसमें एक सीमा तक आधुनिक जीवन की प्रासंगिकता उभर कर आती है।

इसी आदर्श प्रेरणा को कवि ने महाभारत के पात्रों द्वारा चित्रित किया है और उसी प्रेरणा के आधार पर कवि ने हिन्दी साहित्य में प्रथम युद्ध से संबंधित प्रबंध काव्य लिखा है। जो एक अलग विशिष्ट स्थान प्राप्त कर सका है। रसेल का विचार कुरुक्षेत्र में दृष्टिगत होता है।

आज प्रत्येक मानव विज्ञान को सशंक दृष्टि से देखता है। परंतु रसेल उसे न विनाश न अच्छा न बुरा मानते हैं। विज्ञान का उपयोग अगर हम मानव की अच्छाई के लिए करे तो विज्ञान से ध्वंस कार्य नहीं होगा। विज्ञान के सदुपयोग और दुरुपयोग पर ही अच्छा या बुरा कहना निर्भर है। विज्ञान का अगर मानव सुंदरता की भावना से उपयोग करें तो विनाश कभी होगा ही नहीं। कवि ने इस मानव के संतुलन की बिगड़ी स्थिति को चित्रित किया है-

*“ किन्तु है बढ़ता गया मस्तिष्क ही निःशेष
छूट कर पीछे गया है, वह हृदय का देश
न मानता नित्य नूतन बुद्धि का त्यौहार
प्राण में करते दुःखी हो देवता चित्कार”*

मानव के इस द्वन्द्व बुद्धि के कारण विज्ञान ने फूलों को हत्यारा बनाया। इसी कारण विज्ञान को मानव भय की दृष्टि से देखता है। विज्ञान को अमंगल की दृष्टि से कार्य में लाने से विनाश को स्वीकारना पड़ता है। कवि ने षष्ठ सर्ग में कहा है-

*“ यह मनुज ज्ञान, शृंगलों कुक्करो से हीन
हो, किया करता अनेकों क्रूर कर्म मलीन।
देह की लड़ती नहीं, है जूझते मन प्राण
साथ होते ध्वंस में इसके कला-विज्ञान
इस मनुज के हाथ से विज्ञान के भी फूल
बन्द होकर छुटते शुभ धर्म अपना भूल।”*

रसेल का मत भी विज्ञान के फूल को हत्यारा मनुष्य का भय बनायेगा और विज्ञान के विरोध में क्रांति करेगा।

रसेल का अनुमान है कि विज्ञान के विरोध में शक्तिशाली क्रांति होगी, क्योंकि एटम बम से मानव को खतरा दिखाई देता है। दिनकर को भी यही स्वर कुरुक्षेत्र में सावधान, मनुष्य यदि विज्ञान है तलवार,

“सावधान, मनुष्य। यदि विज्ञान है तलवार
तो इसे दे फेंक, तज कर मोह, स्मृति के पार
हो चुका है। सिद्ध है, तू शिशु अभी नादान,
फूल काँटों की तुझे कुछ भी नहीं पहचान।
खेल सकता तू नहीं ले हाथ में तलवार,
काट लेगा अंग तीखी है बड़ी यह धार”

दिनकर विज्ञान के मोह को त्यागने को कहते हैं, इतना ही नहीं रसेल से दो कदम आगे बढ़कर कुरुक्षेत्र में विज्ञान के विरोध में आंदोलन छेड़ देते हैं। कवि विज्ञान की ही उपेक्षा नहीं करता। वह तो यहाँ तक कहता है कि मानवी शरीर धारण करने से मानव नहीं बनता, मानव बनने के लिए कार्य भी करना आवश्यक है। आज का मनुष्य स्वार्थी है और विज्ञान की आड़ में मानव को अपमानित करता है-

“यह मनुज, जो ज्ञान का आगार
यह मनुज, जा सृष्टि का श्रृंगार
नाम सुन भूलो नहीं सोचो-विचारों कृत्य
यह मनुज संहार सेवी वासना का भृत्य
छद्म इसकी कल्पना, पाखंड इसका ज्ञान,
यह मनुष्य मनुष्यता का धोखम अपमान।”

रसेल कहते हैं कि मानव व्यर्थ कामों में अपना समय और शक्ति का उपयोग करता है और जीवन को उदात्त बनाने वाले भावों की अवेहलना करता है। इसी कारण हमारे हात में वृद्धि तो होती है लेकिन हृदय खोखला हो रहा है।

मानव की प्रगति विज्ञान के बल पर तो अवश्य हुए हैं, पर इसके साथ-साथ उसमें मानव-प्रेम की भावना होना आवश्यक है। आज मानव के हृदय में प्रेम की भावना का अभाव है, वह केवल बुद्धि के बल पर चल रहा है। मनुष्य अगर हृदय और बुद्धि को साथ लेकर चला तो विज्ञान की प्रगति सुन्दरतम के लिए होगी। दिनकर समाज के अत्याचारों को सहना पाप समझते हैं। शोषित वर्गों का शोषण सहना पाप है, उनके विरोध में क्रांति करना कवि पुण्य समझता है। अन्याय के विरोध में क्रांति करना मनुष्य का परम कर्तव्य बन जाता है-

“सहना उसे हो मौन हार मनुजत्व की है।
ईश की अवज्ञा घोर, पौरुष की शान्ति है,
पातक मनुष्य का है, मरण मनुष्यता का,
ऐसी श्रृंखला में धर्म विजय है, क्रांति है।”

रसेल व्यक्ति के वैयक्तिकता को प्रेरणा देता है, क्योंकि उससे ही व्यक्ति को योग्य स्थान मिलता है। सुंदर संसार का निर्माण केवल व्यक्ति ही कर सकता है। उसके लिए वैचारिकता मनुष्य के अंदर होनी चाहिए। राजनीतिक बंधन मनुष्य पर आये तो मनुष्य का विकास नहीं होता। आज समाज में जो बंधन है उसी कारण मनुष्य का विकास हो नहीं पा रहा। मानव को आने वाले क्षण की चिंता उसे कमजोर बना डालती है। दिनकर ने इसी क्षण के चिंता का वर्णन

कुरुक्षेत्र में किया है। आदि मानव के समय अपने भलाई के लिए साधनों को इकट्ठा करने की चिंता नहीं थी न अपने घर को भरने की। तब राजा प्रजा कोई नहीं था, न शासन सभी मानव पर धर्म का अनुशासन था। लोग सामाजिक अधिकारों के साथ-साथ व्यक्तिगत अधिकारों को स्वीकार करते थे। आदिम समाज में जीवन स्वच्छंद था। आज के युग की तरह कृत्रिम नहीं। प्रत्येक मानव का जीवन स्वतंत्र था। आज के समाज की तरह कठोर नियमों के बंधन नहीं थे। कवि ने यह विचार रसेल से ग्रहण किया है-

“राजा प्रजा नहीं था कोई
और नहीं शासन था
धर्म नीति का जन-जन के
मन-मन पर अनुशासन था।”

X X X
“ऋतु था जीवन पंथ चतुर्दिक
भीत उन्मुक्त दिशा है,
पग-पग पर थी अड़ी राज्य
नियमों की नहीं शिलाएँ।”

रसेल व्यक्ति के वैयक्तिक एवं सामाजिक कर्तव्य को भी मानते हैं। वैयक्तिकता और सामाजिकता के बिना मानव का सर्वांगीण विकास नहीं हो सकता। दिनकर भी व्यक्ति को धर्म, तप, दया, क्षमा करना यह उसका वैयक्तिक कर्तव्य मानते हैं, परंतु जब समाज का प्रश्न उठता है तो तप-व्या, त्याग क्षमता को समाज के लिए त्यागना होगा वह चाहे अच्छा हो या बुरा-

“व्यक्तिका है धर्म तप, करुणा, क्षमा
व्यक्ति की शोभा विनय भी त्याग भी
किन्तु उठता प्रश्न बज समुदाय का
भूलना पड़ता हमें तप त्याग को।”

भीष्म केवल युधिष्ठिर का समाधान करनेके लिए उसे तप-त्याग, करुणा त्यागने के लिए यह उपदेश देते हैं, क्योंकि युद्ध समाज के हित का है। इसका अर्थ यह नहीं कि भीष्म युद्ध या हिंसा को अपनाते हैं, यह तो युधिष्ठिर का समाधान मात्र है।

रसेल के युद्ध की आवश्यकता के मत से कवि सहमत है। किसी बात का समाधान युद्ध नहीं हो सकता, उसके लिए अन्य मार्ग भी है। युद्ध का परिणाम केवल विनाश ही होता है, विनाश मनुष्य के लिए हानिकारक होता है। इसी कारण कवि भी रसेल के मत से प्रेरित है। युद्ध को अनिवार्य नहीं मानते, उसके लिए तो मानव की प्रवृत्ति में सुधार भी नकारात्मक प्रयत्न हो सकता है। परन्तु यह प्रयत्न-आंतरिक परिवर्तन का हो तभी समाज में शांति प्रस्थापित होगी और युद्ध नहीं होगा। कवि कहता है-

“समर, शोषण, रक्त की विरुदावली से हीन
पृष्ठ जिसका एक भी होगा न दग्ध, मलीन,
मनुज का इतिहास, जो होगा सुधामय कोष,
युद्ध की ज्वर भीत से हो मुक्त।”

एक दूसरों से परस्पर विश्वास होगा तो एक नया इतिहास बनेगा। युद्ध शोषण कभी नहीं होगा, ऐसे इतिहास का एक भी पृष्ठ मलिन या जला हुआ नहीं होगा। सभी नर-नारी संतुष्ट होंगे। तभी युद्ध के ज्वर के डर से पृथ्वी मुक्त हो जाएगी। युद्ध रहित पृथ्वी का निर्माण होने के लिए नर मात्र में समानता होनी चाहिए। यहीं मार्ग कवि युद्ध से मुक्ति के लिए कुरुक्षेत्र में सुझाता है। कवि प्रत्येक युद्ध का अन्त समन्वय में मानता है। यह समन्वय तभी होगा जब मनुष्य में राजनीतिक और आर्थिक एकता होगी ऐसा कवि मानता है। समाज में जब तक शान्ति स्थापित नहीं होती तब तक समाज में संघर्ष समाप्त नहीं होगा। दिनकर भीष्म को स्वप्न, देखने के लिए विवश करते हैं कि पृथ्वी सर्वथा दोषमुक्त हो जाएगी।

“पृथ्वी हो साम्राज्य स्नेह का,
जीवन स्निग्ध सरल हो,
मनुज प्रकृति से विदा सदा को
दाहक द्वेष गरल हो।”

कवि यही चाहता है कि पृथ्वी पर प्रेम का साम्राज्य प्रस्थापित हो, मानव का जीवन सुखमय हो किसी के मन से जलाने वाली विष की शत्रुता सदैव के लिए दूर हो जाय। कवि शस्त्र द्वारा की गई शक्ति के विरोध में है।

‘कवि मानव के अंतःकरण में परिवर्तन होना अनिवार्य मानता है। दिनकर भीष्म के स्वप्नों में रसेल का मानव जाति का पारस्परिक सहयोग को स्पष्ट किया है। कुरुक्षेत्र में कवि अंत में समाज के कल्याण की शुभ कामना करता है। भीष्म द्वारा वह युधिष्ठिर को समझाते हैं तुम अपने आँसू पोंछो और वैराग्य की भावना को छोड़कर संसार की समस्या का निवारण करो, निराश व्यक्तियों के जीवन में आशा का चिराग जलाओ। युधिष्ठिर तुम्हें उनके आँसू पोंछना है जो युद्ध में अपने भाइयों-पुत्रों-पिताओ को खोने के कारण दुःखित हैं। उनको सुखी करना तुम्हारा कर्तव्य है। इसी से समाज का कल्याण होगा तुम्हारे सन्यास से नहीं।

कवि ने उद्योगवाद का भी विरोध किया है। उद्योगपतियों का विरोध किया है। कवि रसेल के इस उद्योगवाद को कुरुक्षेत्र में चित्रित किया गया है। रसेल आशावादी है वह मानव-कल्याण के लिए आशा करना अवश्य मानता है। कुरुक्षेत्र में आशावाद को प्रथम स्थान है जो रसेल के आशावाद से मिलता है।

कवि पर रसेल के प्रभाव के बारे में कान्ति मोहन शर्मा का कथन है।

“कुरुक्षेत्र की विचार भूमि पर रसेल का पर्याप्त प्रभाव निरूपित किया जा चुका। किन्तु इस प्रभाव के विषय में एक महत्त्वपूर्ण बात का उल्लेख करना शेष रह जाता है। यह प्रभाव मानव के शुभचिन्तक रसेल का है। तार्किक रसेल का नहीं। रसेल ने जिस तार्किक अधिभौतिकवाद का आश्रय लेकर गहन दार्शनिक सत्त्यों की अन्वेषणा की है उससे दिनकर की भाव-भूमि का मेल नहीं बैठता। रसेल जहाँ एक और प्रबल भावुक तथा पक्षपात पूर्ण व्यक्ति है। वहीं एक निर्मम तथा शुद्ध तार्किक भी है। दिनकर ने भावुक रसेल को स्वीकारा है।”

लोकमान्य तिलक का प्रभाव :

‘गीता रहस्य’ का ‘कुरुक्षेत्र’ पर सर्वाधिक प्रभाव दिखाई देता है। “गीता रहस्य” की रचना राजनीतिज्ञ बालगंगाधर तिलक ने की है। गीता में अर्जुन जो युद्ध के पूर्व मोह में पड़ गया था और उस मोह को अर्जुन के मस्तिष्क से निकालने के लिए स्वयं भगवान कृष्ण को अठराह अध्यायों में उपदेश देने पड़े। उसी प्रकार कवि के “कुरुक्षेत्र” में भीष्म को युधिष्ठिर के मस्तिष्क में से सन्यास का मोह निकालने के लिए कृष्ण का रोल निभाना पड़ा। कृष्ण अर्जुन को अन्याय के विरोध में लड़ने का मार्गदर्शन कर रहे थे। उसी प्रकार भीष्म भी अन्याय को न्याय का मार्ग दिखा रहे थे। इसी का प्रभाव कवि पर है। कवि की रचना में गीता का यह प्रभाव तिलक के माध्यम से है। कवि की तिलक पर अपार श्रद्धा थी। कवि की श्रद्धा तिलक के प्रति उनके ‘संस्कृति के चार अध्याय’ में दिखायी देती है।

यह कार्य बौद्धों तथा शंकर द्वारा पहुँचाए गए निवृत्ति के गीता में भी कर्म की अनिवार्यता पर बल है। कर्म के बिना मानव जी ही नहीं सकता-

“न हि कश्चित् क्षणमणि जातु निष्ठत्यकर्मकृत्।

कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणे।”

तिलक “समाज धारणा” का तत्व मान्य करते हैं। कर्म का विचार व्यक्ति के सामने समाज में अपने कार्य से क्या परिवर्तन होगा यद्यपि समाज की उन्नति होगी तो वह कर्म पुण्य है और समाज को नुकसान होगा तो वह कर्म पाप हैं। इसी कारण तिलक के साथ-साथ कवि भी कर्म को अपनी रचना में महत्त्व दे चुका है।

लोकमान्य तिलक के “आत्म कल्याण” के तत्व का प्रभाव भी इस रचना में है। यही तिलक का तत्व, मानवतावादी है और “गीता रहस्य” की विशेषता भी।

गीता रहस्य की प्रमुख विशेषता देशी और पश्चिमी दर्शनों का समांजस्य है वहीं धारणा कुरुक्षेत्र में है। भीष्म धर्मराज से कहते हैं-

“भोगो तुम इस भाँति मृत्ति को, दाग नहीं लग पाये,

मिट्टी से तुम नहीं, वही तुम में विलीन हो जाये

और सिखाओं भोगवाद की, यही रीति जन-जन को

करे विलीन देह को मन में नहीं देह में मन को।”

इसी प्रकार तिलक का प्रभाव कुरुक्षेत्र पर दिखाई देता है।

महात्मा गांधी का प्रभाव :

महात्मा गांधी के अहिंसा-हिंसा का प्रभाव ‘कुरुक्षेत्र’ पर दिखाई देता है। विष का निराकरण विवेकानन्द और उनसे भी अधिक लोकमान्य तिलक के लिए रुका हुआ था, तथा इसमें कोई संदेह नहीं कि हिन्दुत्व के भीतर प्रविष्ट जिस कालकूट को कभी तत्व चिन्ता की दृष्टि नहीं देख सकी थी। उसे तिलक की आंखों ने देख लिया। तिलक ने केवल देखा ही नहीं, प्रत्युत अपनी प्रखर बुद्धि से उसे दूर भी कर दिया। इसलिए हम मेरा मत है कि ‘गीता’ एक बार तो भगवान कृष्ण के मुख से कही गई, किन्तु दूसरी बार उसका सच्चा आख्यान लोकमान्य ने ही

किया है। इन दोनों के बीच की अन्य सारी टीकाएं और व्याख्याएं के सत्य बादल बनकर छाती रही है।”

कुरुक्षेत्र में कर्म को कवि ने प्रथम स्थान दिया है, जो गीता में प्रमुख रूपमें स्वीकृत है। तिलक भी गीता के कर्म को श्रेष्ठ मानते हैं। गीता-रहस्य में कवि प्रवृत्ति और निवृत्ति पर जो बल देता है वही बल दिनकर सन्यास पर देते हैं। सन्यास निवृत्ति का मार्ग नहीं है। शुभ-अशुभ की भावना तो कर्ता के ऊपर निर्भर होती कर्म ना पाप है ना पुण्य, जिस भावना से कर्म किया उसको हम पाप या पुण्य कह सकते हैं। यही तिलक ने “गीता रहस्य” में बल देकर कहा है। उसी का अनुकरण दिनकर ने अपनी इस रचना में किया है। पाप-पुण्य की बात ही कवि ने भीष्म द्वारा युधिष्ठिर को समझायी है-

“हे मृष तेरे हृदय कमी जलूपना,
युद्ध करना पुण्य या दुष्पाप है,
क्योंकि कोई कर्म है ऐसा नहीं,
जो स्वयं ही पुण्य हो या पाप हो।”

गाँधी के चारित्रिक कर्मयोग के तत्व का भी प्रभाव कवि की इस रचना पर है। गाँधी जी के हिंसा-अहिंसा का दर्शन “कुरुक्षेत्र” में प्राप्त होता है कि गाँधी का प्रभाव कुरुक्षेत्र पर है।

“मैं भी हूँ चाहता जगत में कैसे उठे जिघांसा,
किस प्रकार फैले पृथ्वी पर करुणा प्रेम अहिंसा”

“कुरुक्षेत्र” में सेवा की भावना को भीष्म श्रेष्ठ मानते हैं यह गाँधी की विशेषता थी-
“प्रेरित करो इतर प्राणी को निज चरित्र के बल से,
भरो पुण्य की किरण प्रजा में अपने तप निर्मल से।”

सेवा भावना के साथ-साथ गाँधी कर्म पर विश्वास रखते थे, भीष्म भी यही बात बताते हैं-

“और जिसे पा कभी न सकता सन्यासी, वैरागी,
स्व-सुख साथ ही हो सकते तुम उस सुख के भी भागी।”

इस प्रकार दिनकर पर गाँधीवाद का प्रभाव था जो ‘कुरुक्षेत्र’ में प्राप्त दिखाई देता। आलोचक इस रचना को गाँधीवादी मानते हैं। परंतु यह शत-प्रतिशत सच नहीं हो सकता।

समाजवाद का प्रभाव भी दिनकर पर दिखाई देता है। इसी कारण, आलोचक कुरुक्षेत्र को प्रगतिवादी काव्य कहते हैं। कुरुक्षेत्र के भीष्म यह स्वीकार भी करते हैं।

“जब तक मनुज मनुज का यह सुख भाग नहीं सम होगा,
शामित न होगा कोलाहल संघर्ष नहीं कम होगा।”

विवेचन से स्पष्ट होता है कि कवि पर महाभारत, रसेल, गाँधी, समाजवाद, मानवतावाद आदि का प्रभाव रहा है। और यही प्रभाव “कुरुक्षेत्र” में दृष्टिगत होता है।



अरुण कमल के काव्य की भाषा

समकालीन हिन्दी काव्य के सामने तार सप्तक के समान संकट नहीं है। अज्ञेय ने लिख है- ‘भाषा को अपर्याप्त मानकर विराम संकेतों से, अंको और सीधी तिरी लकियों से, बड़े टईपसे, सीधे या उल्टे अक्षरों से, लोगो और स्थानों के नामों से, वाक्यों से सभी प्रकार के इतर साधनों से कवि उद्योग करने लगा की अपनी उलझी हुई संवेदना की सृष्टि पा कर उस तक पहुँचा सके।’ इसी कारण समकालीन कविता में ‘मानवीय गहराई’ बढ़ी है। इस कविता ने अपनी कार्य शैली भी बदल दी है। ठीक पहले की कविता वक्तव्यों, विचार-उच्छवासों और प्रतिज्ञाओं से भरी हुई थी, लेकिन अब समकालीन कविता कवि का वक्तव्य न होकर जीवन की सच्चाई का चित्रण करते हैं। उसने कविता में समग्र, संश्लिष्ट विन्यास को रचा है। जिसके लिए अरुण कमल ने कहा है – “अकविता के दौरान और उसके बाद धुमिल तक में तथा धुमिल के बाद भी प्रायः ऐसा देखा जाता है कि कविता की एक या दो पंक्ति, पद या बिंब सारा ध्यान लुट ले जाते हैं। बाद कि कविता ने फिर निराला जैसी अन्वित और अखंडता हासिल करने का प्रयत्न किया। इसी का नतिजा यह है की इन कवियों ने अधिकांशतः छटी कविता लिखी यानी लंबी नहीं इस के पहले लंबी कविता का रिवाज था लेकिन इन्होंने छोटी अथवा कम शब्दों की कविता लिखी क्योंकि वहाँ शब्दों का पारस्परिक संबंध-निर्वाह ज्यादा सुगम है।”

इस तरह समकालीन कविता में ‘शिल्प’ शब्द को व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया है। इसका तात्पर्य सौंदर्य के उन तमाम उपादानों, साधनों, तत्त्वों आदि से है। जिनके द्वारा वह अपने भाव और विचार पाठकों तक पहुँचते हैं। काव्य शिल्प की चर्चा करते समय सबसे पहले काव्य भाषा की बात उठाई जाती है। क्योंकि भाषा ही अभिव्यक्ति का सर्वाधिक सशक्त साधन है। भाषा के माध्यम से ही कवि अपनी बात या भाव पाठकों के सामने रख सकता है। यही कवि की सर्जनात्मक क्षमता को परखने का आधार है। अच्छे कवि को यह भी मालुम होना चाहिए कि वह जिस भाषा में कविता कर रहा है उस भाषा का ज्ञान उसे अच्छी तरह होना चाहिए।

अरुण कमल ने जनसाधारण की भाषा को अपनी किताबी की भाषा बनाई। कवि जनसामान्य के बिच से भाषा को उठाकर मॉजता है और उसे अपनी कविता कि भाषा बनाता है। उसी कारण उनके कविता में जीवन काक प्रत्यक्षीकरण होता है। इससे भाषा को दृश्य या इन्द्रियगम्य बनाने की पूर्ण क्षमता आजाती है और भाषा का दृश्य होना समकालीन काव्य-भाषा की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। अरुण कमल ने अपनी कविताओं में अभिव्यक्त होने वाले भाव को ठेठ समकालीन भाषा के अत्यन्त सहज लहजे में प्रस्तुत किया है उनकी भाषा जनजीवन से सीधे उठकर काव्यभिव्यक्ति का माध्यम बनती है। भाषा को वे कोई आभिजात्य संस्कार अथवा कोई आक्रमक कठिन जटिल बुनावट नहीं देते: “हम कुल दो थे/दोनों साथी/राह थी लम्बी/थक कर

चूर/वह भी मैं भी।” अरुण कमल की किताब में जीवन के विविध क्षेत्रों का चित्रण मिलता है। इस विविधता के कारण उनकी भाषा में भी विविधता के दर्शन होते हैं। कविने स्वयः इस तथ्य की मार्मिक अभिव्यंजना करते हुए कहा है- “जीवन के जीतने ज्यादा क्षेत्र कविता में आएँगे, कविता की भाषा भी उतनी ही विविध होगी। इस लिए भाषा की विविधता वास्तव में जीवन – स्थितियों और वस्तुओं की विविधता है।” साथ ही साथ यह ठीक है कि समकालीन जीवन के ज्यादा से ज्यादा पक्षों को छू सकाने में समकालीन कविताओं में विस्तार भी आ जाता है।

अरुण कमल ने पुरानी भाषा के मान दंडि के तोड़ने का प्रयास किया है। और उन्होंने नई दृष्टि को अपनाया है अरुण कमल ने पुरानी भाषा को तोड़ा तो नहीं बल्कि उसे माजकर या तराश कर अपनी कविता में प्रस्तुत किया है। इसी कारण उनकी भाषा में मौलिकता और सहजता मिलती है। भाषा में आक्रमकाता नहीं बल्कि अपने अनुभव को साफ ढंग से कहने का एक मार्ग है। कवि मानता है कि अनुभव जैसे बदलते हैं वैसे भाषा का बदलना भी संभव हो जाता है। वे कहते कि – “जीवन के हर पक्ष की, हर क्षण की अपनी भाषा होती है। जैसे जीवन के दृश्य बदले वैसे भाषा भी साथ साथ बदले। कवि की कोई भाषा नहीं होती। जितने मुँह उतनी भाषा।” इसी कारण प्रत्येक कवि की अलग अलग भाषा होती है। प्रत्येक पीढ़ी के कवि की भाषा अलग भाषा होती है। प्रत्येक पीढ़ी के कवि की भाषा अलग अलग होती है। अरुण कमल ने लोक जीवन के प्रचलित भाषा का प्रयोग किया है। उन्होंने लोक जीवन से शब्दों, मुहावरों आदि को लेकर कविता में सार्थक ढंग से पिरोया है। यह लोक अनुभव ऐसी है जो उनकी काव्यानुभूति बनकर कविताओं में प्रकट होती है। वे लोक जीवन के रेशे-रेशे से परिचित हैं और उसका एक अभिन्न अंग होने के कारण अपनी कविता में उसका उन्होंने ने बखुबी से प्रयोग किया है। उनकी कविताओं में स्थानिकता का रंग देखने को मिलता है। लोक जीवन से जुड़ाव होने के कारण उनके कविताओं में भोजपुरी के शब्द, लहजा का प्रयोग अधिक मात्रा में मिलता है। नये इलाके में की ने कविताओं में स्थानियता का रंग देखने मिलता है। कवि ने भोजपुरी शब्दों का प्रयोग अनेक स्थलों पर किया है कुछ उदा.

हर थोड़ी दूर पर मेंडों की छाँह-
चमकती हैं कटी खुँटियाँ
दूर पर चरती भेड़ों के रेवड़
और मूसकोल
और चीटियों के बिलों के बाहर मिट्टी चूर

इस कविता में ‘मेंडों की छाँह’, ‘खुँटियाँ’, ‘रेवड़’, ‘मूसकोल’ आदी शब्द ग्रामीण परिवेश का सजीव वर्णन करते हैं। अरुण कमल कि यह अपने मिट्टी से लगन को प्रस्तुत करती है।

पेड़ कटनर पर बचा हुआ थम्भ
किसी थके बैल या गाभिन गाय का
खूँटा बना जाएगा।

- - - - -

लेकिन कही न कही तो अभी बी है एक कोना

जहाँ डाला है सबने लक्कड-फक्कड
बाल्टू से अलग हुआ
नट कलम की खोंपी कुर्सी का हत्था अंट शंट

अरुण कमल ने इस प्रकार स्थानिय शब्दों का प्रयोग अपनी कविताओं में किया है- गिजबिज, बुकडा, चौखट, बोरसी, ढिबरी, सॉकल, गुइयाँ, झोला, चूडा, हँकरी, लुकाठी आदि शब्दों का प्रयोग कवि ने करके अपने परिवेश को कविता के माध्यम से जीवित करने का प्रयास किया है। वे आधुनिकता से कोसो दूर है-

चौहट पारती हैं टोले की लड़कियाँ
उठते हैं स्वर
छितराती हैं धरती पर
राई-सी पाँवों की थाप।

सब कूछ सीती हूँ बीबीजी
क्या कोई दर्जी सीएगा वैसा
आप नही की जीजी से पूछ लीजिए
शादी का सारा कपड़ा मौनेसिया है
जरा भी नुक्स हो कपड़े का सारा दाम,
अब तो यही काम हो गया है
शाकिया शुरु किया था और अब तो
यही रोजी रोटी है।
शौहर से जुदा हुए दो बरस हो गए
बस दो छोटे बच्चे हैं खुदा की देनी से
और आप लोगों को दुआ है।

अरुण कमल ने अपनी कविता में उर्दू शब्दों को भी प्रयोग बड़ी मात्रा में किया है। प्रस्तुत कविता में भी उर्दू शब्दों का प्रयोग किया है।

अरुण कमल ने अपने कविताओं में व्यक्तिवाचक नामों का भी प्रयोग किया है। इस प्रकार से नामों का प्रयोग करने कवि का लोगो से और जन जीवन से अधिक लगाव है यह स्पष्ट हो जाता है। नये इलाके में इस के कुछ उदा.

नाक पर डाले रुमाल गरीब बहन के आँगन से गुजरा
ओर बलवंत के आगे टाँगे रहा भरा पीकदान।

जब सूरत में महामारी फैली
जब तो हजारों लोग वहाँ से लदफद भागे
उनमें हरनन्दन बी था।

कवि ने अपने दुसरे काव्य संग्रहों में भी व्यक्तिवाचक नामों का प्रयोग किया है।

समकालिन कविता में व्यगात्मकता एक विशेषता है आज कि कवित मे समाज विभिन्न विसंगतियों का है और इसी विसंगतियों का चित्रण समकालिन किताब में मिलता है । व्यंग बोधक और चुभने वाला बान है वह मन में धिरे धिरे चुभता है अरुण कमल के कविता में भी इस प्रकार के उदा. मिलते है-

संसद के संयुक्त अधिवेशन ने ध्वनि मत से
संविधान का अन्तिम संशोधन पारित कर किया
जिस के अनुसार अब किसी भी सिक्के में
एक हि पहलू होगा
इस प्रकार सहस्त्रों वर्षों से चले आ रहा
अन्याय समाप्त हुआ।

कवि इस कविता में व्यंग करता है कि सैकड़ों वर्षों से चले आरहे आत्याचार को संविधान के माध्यम से हटाने का प्रयास तो किया गया परंतु शासन करता लोग यह नहीं चाहते कि वह तो जनता बोध करने का मौका तक नही देते। शासन अपने मर्जी के अनुसार चलाना चाहते है। यह बात कवि ने व्यंग के माध्यम से चित्रित कि है।

अरुण कमल के कविताओं में अछूते बिंब देखने मिलते है। यह बिंब प्रकृति लोक-जीवन से उनकी कविता में आये है। वे अपने सामान्य और साधारण बिंबों को अपने चिर परिचित परिवेश से ऊटते है। नये इलके में इस कविता संग्रह में भी कवि इस प्रकार के बिंबों का प्रयोग करता है। उदा.- ‘आ चला पानी ढहा आ रहा आकास’, ‘दरकता धूप में मिट्टी का सूखता शरीर’, अदि देखने को मिलता है। लेकिन इन्हें सन्दर्भ से अलग देखना कठिन है। ये एक तर्फ कविता के सम्पूर्ण आशय में विसर्जित होता है। इस बात से स्पष्ट हो जाता है की अरुण कमल के काव्य में बिंब बहुलता नहीं है। समकालिन कविता में भाषा के बारे कहा जाता है कि यह भाषा अनुवाद कि भाषा है। कवि पाठक के पीछे लग जाता है। कवि अनेक लयों का भी इस्तेमाल करता है। समकालिन कविता मे देशीपन का प्रयोग हुआ है। समकालिन कवियो ने अपनी मातृ-भाषा का प्रयोग किया है वे मातृ-भाषा के अंतरंग तक पहुच जाते है। अरुण कमल ने भी इसी भाषा को अपनी कविता में प्रस्तुत किया है इसी कारण वे समकालिन हिन्दी कविता के सफल कवि माने जाते है।



अरुण कमल और उनका काव्य

अरुण कमल समकालीन कविता के बहुचर्चित कवि है। अपनी कविताओं के माध्यम से उन्होंने समकालीन कवियों में अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई है। समकालीन कविता से यहाँ आशय है आठवें और नौवें दशक में विकसित होने वाली कविता। साथ ही समकालीन होने का अर्थ है- अपने समय द्वारा उठाए गए प्रश्नों से टकराना। समकालीन कविता की मुख्य प्रवृत्ति है – प्रगतीशीलता, जो कि हर अवस्था में गतानुगतिकता और रूढ़ियों से टकराकर निरन्तर आगे बढ़ते रहने वाली धारा है। इसमें जीवन के यथार्थ का चित्रण होता है। यह यथार्थ बोध अरुण कमल ने नई जमीन पाता है। अरुण कमल का काव्य संघर्षशील मनुष्य की गाथा और अपने समय और समाज के सच को समेटे हुए है। उनकी कविताएँ पाठक को प्रभावित ही नहीं करतीं अपितु उसे झकझोरती हैं, सोचने पर विवश करती है। इनमें चहुँओर व्याप्त सामाजिक एवं राजनीतिक विसंगतियों के नीचे दबे हुए मनुष्य की विवशता, असहायता और उसके मूक दर्द के साथ तादात्म्य स्थापित करके उसे कविता में पूरी शिद्दत से प्रस्तुत किया गया है।

अरुण कमल के काव्य-संग्रह अपनी केवल धार (१९८०), सबूत (१९८९), नये इलाक में (१९९६) और पुतली में संसार (२००४)। साथ ही उनकी आलोचना-पुस्तक कविता और समय (१९९९)। इसके अतिरिक्त वियतनामी प्रकाशित हुए हैं। कवि तो हू की कविताओं एवं टिप्पणियों की अनुवाद पुस्तिका, मायकोव्स्की की आत्मकथा का अनुवाद तथा अँग्रेजी में 'वॉयसेज' नाम से भारतीय युवा कविता की पुस्तक भी प्रकाशित हुई है। अपने सजग लेखन के लिए वे समय-समय पर 'भारतभूषण अग्रवाल पुरस्कार', 'श्रीकान्त वर्मा स्मृति पुरस्कार', 'सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार', तथा 'शमशेर सम्मान', से सम्मानित किए जा चुके हैं। वर्ष १९९८ का 'साहित्य अकादेमी' पुरस्कार उनके 'नये इलाके में' को दिया गया। अरुण कमल के इन चारों काव्य-संग्रहों में वर्तमान शोषणमुलक व्यवस्था के खिलाफ आक्रोश, नफरत और उसे उलटकर एक नई मानवीय व्यवस्था का निर्माण करने की आकुलता दृष्टिगत होती है। अपने समय के लोगो के साथ चलते हुए, कवि ने जो कुछ भी अनुभव किया, मनुष्य पर आए दबाव को गहरे में भोगा उसे यहाँ वाणी मिली है।

जीवन का कविता से गहरसा लगाव है। जीवन के प्रवाह से उपयुक्त प्रसंगो को चुनकर ही उन्हां कविता का रूप दिया जाता है। अरुण कमल के पास संवेदनशील दृष्टि है। वे बड़ी कुशलता एवं सहजता से जीवन-प्रसंगो को कविता में रूपान्तरित कर देते हैं। उनकी कविताएँ मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन से, दैनंदिन के कार्य-व्यापार और परिवेश से गहरे जुड़ी हुई हैं। जीवन की सामान्य अवस्था, गतिविधियों एवं उसके सामान्य परिवेश को उन्होंने अपनी कविता का विषय बनाया है। जीवन और कविता के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध को दर्शाते हुए मलयज ने कहा-

“जीवन कविता को और कविता जीवन को एक परिप्रेक्ष्य प्रदान करते हैं।” अरुण कमल की कविताओं में जीवन ही कविता बन गया है। जीवन की जिन स्थितियों और यथार्थ तक कवि गया है उन्हें उसने पूरी गहराई से पकड़ने का प्रयास किया है। जीवन के भारी दबाव और संघर्ष की स्थिति की कविता में अभिव्यक्त करने की पूरी क्षमता उनके पास है।

अपनी केवल धार -

अरुण कमल का प्रथम काव्य-संग्रह है- अपनी केवल धार। इस संग्रह में उन्होंने अपने युग और समय की समस्त पीड़ाओं, अन्तर्विरोधों और कसमसाती हुई सम्भावनाओं को वाणी दी है। इस काव्य संग्रह की प्रतिनिधि कविता ‘धार’ की एक अत्यन्त प्रसिद्ध पंक्ति है-

अपना क्या है इस जीवन में
सब तो लिया उधार
सारा लोहा उन लोगों का
अपनी केवल धार।

- धार

ये पंक्तियाँ एक केन्द्रीय सुत्र का काम करती हैं जो कवि के काव्य-संसार को समझने में तो सहायक होता ही है, उसकी जीवन-दृष्टि पर भी पर्याप्त प्रकाश डालता है। वह घोषणापूर्वक कहता है कि उसकी कविताओं की संपूर्ण अभिव्यक्ति उस जीवन की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है जो उन लोगों की है। उन लोगों से यहाँ कवि का आशय निश्चित रूप से देश की मेहनतकश जनता से है। अरुण कमल अपनी जीवन-दृष्टि, अपनी कविता का भरा-पुरा संसार और अपनी काव्य-भाषा से लेकर अभिव्यक्ति के तरीकों तक का जनसाधारण के बीच से उठाते हैं। कवि का काम तो उन्हें मॉजना और पिंजना है। ये पंक्तियाँ इस ओर भी संकेत करती हैं कि किस तरह जीवन का अनुभव काव्य का अनुभव बनता है। लोहा धार पाकर जैसे संघर्ष का हथियार बनता है, जीवन का अनुभव भी कवि का स्पर्श पाकर वैसे ही कविता के रूप में संघर्ष का हथियार बन जाता है। यह ‘धार’ जीवन की विषमताओं का साहसपूर्ण ढंग से सामना करने, उसे चुनौती देने और एक सुखी समतामूलक समाज रचने और उसे बनाए रखने की शक्ति देती है। कवि जनतर की चीज, जनता से लेकर उसी को लौटा देता है, लेकिन एक तीक्ष्ण अस्त्र के रूप में। कविता कैसे संघर्ष का हथियार बनती है इस प्रक्रिया को कवि ने सहज ही अभिव्यक्त कर दिया है। कवि और कविता के सरोकरा की अभिव्यक्त करने वाली ऐसी पंक्तियाँ कम ही मिलेंगी।

अरुण कमल की काव्य-चेतना का आधार है जन-जीवन के साथ उसका आत्मीय एवं घना लगाव। यहाँ विषय का बन्धन नहीं है। आलोचना नन्दकिशोर नवल के शब्दों में : “कविता किसी भी जीवन को विषय बनाकर लिखी जा सकती है, बशर्ते उस जीवन के अन्तर्विरोधी की कवि को ठीक-ठीक पहचान हो और वह उन्हें अपनी कविता में ठीक-ठीक चित्रित कर सके।” अरुण कमल की रचनाधर्मिता यहाँ निम्न वर्ग के शोषित, असहाय, विवश और उत्पीड़ित व्यक्तियों की व्यथा को पूरी तरह उभारती चलती है। यहाँ जनजीवन के न केवल विविधतापूर्ण और व्यापक अनुभव चित्रित हैं, अपितु जीवन के अन्तर्विरोधों को भी पूरी गहराई से पकड़ने की

कोशिश मिलती है। उनकी कविताओं में उभरने वाला समाज देश का निम्न और निम्न-मध्यवर्गीय अभावग्रस्त समाज है। इसमें पंजाबी मजदूर निहाल सिंह है, जो खुशहाल पंजाब को छोड़कर जूट मिल में काम करने पश्चिम बंगाल जा रहा है। इस पूंजीवादी व्यवस्था में मजदूर का अपना घर-गाँव-जमीन कुछ भी अपना नहीं रह पाता। 'यात्रा' कविता की ये पंक्तियाँ पूंजीवादी व्यवस्था में जकड़े सम्पूर्ण मजदूर वर्ग की मुक व्यथा का वाणी देती है-

कौन नहीं चाहता जहाँ ज़मीन उगे
मिट्टी बन जाये वहीं,
पर दोमट नहीं, तपता हुआ रेत ही है घर
तरबूज का,
जहाँ निभे जिंदगी वही घर वही गाँव।
- यात्रा

अरुण कमल के काव्य-संसार में मजदूरों, खेत-मजदूरों और अन्य अभावग्रस्त लोगों से लेकर किवाड़ से लगकर रोता हुआ नन्हा सा होटल का मजदूर लड़का ('होटल') और भीख माँगते बच्चे हैं ('अहिंसा और भीख माँगते बच्च'), बीमारी और वृद्धावस्था में भी दूसरों के घरों में मेहनत करने वाली कुबड़ी बंढिया (और बेचारी कुबड़ी बुढ़िया) है, नल पर पानी भरने के लिए जाने वाली गर्भवती भौजी है (धरती और भार) और साथ ही है एक अभावग्रस्त रिटायर्ड स्कूल मास्टर जो इस-उसके बेटे-बेटियों को ट्यूशन पढ़ाता है पर अपने बच्चे को पढ़ाने का समय नहीं निकाल पाता (मुक्ति)। यहाँ कवि इन चरित्रों और उनके सामाजिक परिवेश के चित्रण तक ही अपने कवि-कर्म को सीमित नहीं रखता। लड़के का रोना सुनकर मुँह की ओर जाता हुआ कौर हाथ में ही उठा रह जाता है, कुबड़ी बुढ़िया का असमय मरना अवसन्न कर जाता है और रिटायर्ड मास्टर की व्यथा भीतर तक हिला जाती है। इन सभी कविताओं में गहरा अवसाद है जो क्रमशः बना होता जाता है।

अरुण कमलके इस संग्रह में कुछ कविताएँ ऐसी हैं जिनका आधार अखबार की खबरें हैं, जैसे- 'खबर', 'मई का एक दिन', 'अपील', 'बच्चा क्यों हँसता है', 'युद्ध क्षेत्र', 'डायरी : मार्च ७८', 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' आदि। लेकिन ये कविताएँ महज अखबार की खबरों का दस्तवेज नहीं हैं। इनकी प्रासंगिकता अभी भी है और आगे भी बनी रहेगी। कवि ने यहाँ अपने दृष्टिकोन के सहारे उन्हें व्यापक सन्दर्भों से जोड़कर उनमें गहरी अर्थवत्ता भर दी है। ये कविताएँ कवि की, अपने परिवेश के प्रति जागरूकता को दर्शाती हैं। रोज़मर्रा की खबरों को कवि ने अपनी सम्वेदना का अंग बनाकर उसके पीछे निहित गम्भीरता को दर्शाया है। उनकी कविता में जीवन का अन्तर्विरोध व्यक्त हुआ है, जो अकेलेपरन की मनोदशा में रह रहा है, लेकिन उसे स्वीकार नहीं करता:

और पोटली में बँधे हुए बूटों ने फेंके हैं अंकुर
निर्जन घर में जीवन की जड़ों को पोसते रहे हैं ये अंकुर।
- उर्वर प्रदेश

सबूत -

अरुण कमल के पहले काव्य-संग्रह अपनी केवल धार की कविताओं का विकास सबूत में मिलता है। सबूत में संकलित अरुण कमलकी कविताएँ वैचारिक तथा भावनात्मक, दोनों स्तरों पर कवि के रूप में उनके विकास को दर्शाती हैं। यहाँ भी उन्होंने सब स्थितियों और विवरण जनसामान्य की जीवन-भूमि से चुने है। जन-जीवन के साथ आत्मीय एवं घना लगाव होने के कारण कवि समस्त परिवेश के प्रति अत्याधिक जागरूक रहा है। यहाँ कवि का बहुस्तरीय यथार्थ के किसी भी चरित्र, घटना या दृश्य का अपनी कविता का विषय बनाने का सामर्थ्य लक्षित होता है। सामान्य जीवन की समस्याओं से जुड़ी होने के कारण, पाठक उनकी कविताओं को पढ़ते ही एक प्रकार का गहरा जुड़ाव महसूस करने लगता है। उनकी कविताएँ न तो नितान्त वैयक्तिक हैं, और न ही निपट सामाजिक। यहाँ इन दोनों का सुन्दर सामजस्य देखने को मिलता है। उनके यहाँ जीवन की लगभग वे सारी स्थितियाँ मौजूद हैं जिसने एक अत्यन्त सामान्य मनुष्य का रोज सामना होता है। उनके यहाँ जीवन की लगभग वे सारी स्थितियाँ मौजूद हैं जिसने एक अत्यन्त सामान्य मनुष्य का रोज सामना होता है। जुल्म के खिलाफ लड़ते अदम्य बादशाहा खान ('बुढ़ापा'), आदमी के बीच पनप रह शक और अविश्वास ('उल्टा जमाना', 'खतरा') आदि ऐसी सभी चीजों को स्थान दिया है जिनका सम्बन्ध आज के समाज और मनुष्य से हैं। उनकी ये कविताएँ अपने समयकी त्रासद दशा का पूरे काव्य-संयम के साथ चित्रण करती है। ये कविताएँ समाज के मूल अन्तर्विरोधों और जीवन के मुल प्रश्नों तक हमें ले जाती हैं। जीवन को देखने-परखने का आधार देती हैं। ये कविताएँ उस परिवेश और परिदृश्य को उभारने में सहायक होती हैं जिनके माध्यम से भारतीय जीवन के विविध रूप जीवन्तता के साथ उपस्थित हो जाते हैं।

अरुण कमल की कविताओं में सहज अभिव्यंजना के दर्शन होते हैं जो उनकी संवेदनशीलता और रूढिमुक्त प्रगतिशीलता की देन है। पूर्ववर्ती आधुनिक कवियों की तुलना में अरुण कमल में स्पष्टवादिता अधिक है। वे बिना किसी लाग-लपेट के सीधे कहना चाहते हैं। अपनी अनुभूतियों को निर्भीकतापूर्वक बेबाक ढंग से अभिव्यक्त करते हैं। उनमें निष्पक्ष चिन्तन भी है। वे पुरानी पीढ़ी की लीक पर नहीं चल रहे, उनका अपना खुद का मुहावरा है। कवि में ज्यों-ज्यों जिन्दगी को देखने-समझने और समाज से अपने रिश्तों को परिभाषित करने की समझ स्पष्ट होती गई है त्यों-त्यों उसका निजी मुहावरा भी विकसित होता गया है। उनके यहाँ जीवन का प्रत्येक अंश, प्रत्येक भाव और बोलने की प्रत्येक भंगिमा कविताका विषय बन गई है। वे प्रत्येक वस्तु को अपने स्पर्श से कविता में तब्दील कर देते हैं। उनके इस संग्रह की कविताएँ व्यक्तिगत जीवन के सुख-दुख से लेकर न्यूट्रान बम की त्रासदी तक एक व्यापक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करती हैं।

अरुण कमल दुखी मनुष्यों के कवि हैं – दुख से मुक्ति की लड़ाई में सन्नद्ध। 'सबूत' में ऐसी कविताएँ ज्यादा हैं जिनमें सामान्य आदमी के दुःख-दर्द में कवि सामान्य आदमी की तरह शामिल हुआ है। उनकी उन कविताओं में कहीं भी उत्तेजकता नहीं है, मगर बेधकता है, चुभन नहीं है मगर भीतर पहुँचकर विचलित करने की शक्ति है। यह कविता की विकसित क्षमता की पहचान है। ये कविताएँ समकालीन हिन्दी कविता को एक नया स्वर देती हैं। ये वर्तमान व्यवस्था के विरुद्ध, संघर्षशील मानव के पक्ष में, जीवन मात्र के पक्ष में सबूत हैं।

‘नये इलाके में’ -

अरुण कमल का काव्य-संग्रह नये इलाके को १९९८ में साहित्य अकादेमी के पुरस्कार से सम्मानित किया है, इस संग्रहों की कविताओं से सम्बद्ध होकर भी उनसे कुछ अलग हैं। यहाँ जीवन के गहनतम अन्तर्विरोधी का चित्रण है, साथ ही मनुष्य के आपसी रिश्तों की खोज तथा आधारभूत मानवीय भावनाओं, मूल्यों की बचाए रखने की बेचैनी ज्यादा दिखाई देती है। यह परिवर्तन सम्भवतः कवि के अपने अनुभवों और जीवनके सन्दर्भ में निष्कर्षों में हुए परिवर्तन से जुड़ा है। या फिर यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि कवि की सम्वेदनाओं की जड़ें अपने समय और परिवेश में होती है। समय के बदलाव और परिवेश के दबावों के साथ सम्वेदनाएँ भी बदल जाती है। इस काव्य-संग्रह की कविताएँ जैसे एक नए संसार के साथ जुड़ने कि प्रक्रिया का इज़हार करती हैं। इन कविताओं में नुकीलापन है, व्यंग्य की तिक्तता है और साथ ही है- त्रास और दर्द की गहन पीड़ा।

नये इलाके में इस संग्रह की पहली ही कविता का शीर्षक है जो एक प्रकार से पूरे संग्रह का संचालन करती है। यहाँ एक ऐसी दुनिया में प्रवेश का आमन्त्रण है जो एक ही दिन में पुरानी पड़ जाती है। यह इस बात का बोध कराती है कि जीवन में कुछ भी स्थायी नहीं। संसार में रोज ऐसे परिवर्तन हो रहे हैं जिन पर मनुष्य का बस नहीं चलता और यह स्थिति उसमें हताशा और पराजय के भाव को जन्म देती है। यह संसार इतना परिवर्तनशील है कि यहाँ स्मृति कीभी भरोसा नहीं है, वह भी धोखा दे जाती है। इस पल-पल बनती-बिगड़ती दुनिया का वर्णन अरुण कमल ने इस कविता में बहुत गम्भीरता से प्रस्तुत किया है :

यहाँ रोज कुछ बन रहा है
रोज कुछ घट रहा है
एक ही दिन में पुरानी पड़ जाती है दुनिया
जैसे वसन्त का गया कतझड़ को लौटा हूँ
जैसे बैसाख का गया भादों को लौटा हूँ।

- नये इलाके में

कवि की पीड़ा यहाँ वर्तमान समाज को लेकर है। उन मुल्यों को लेकर है जो आज विघटित हो रहे हैं। लेकिन स्थिति का प्रभाव कवि को पुरी तरह तोड़ता नहीं है। उसमें जीवन के प्रति आस्था बरकरार रहती है। यह कविता श्रेष्ठ काव्य के निकष पर खरी उतरती है और अच्छी कविता की पहचान ही यह है कि वह- हमें हर बार निरस्त्र कर देती है।

नये इलाके में की कविताओं में कवि ने एक खास मनोदशा को व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। इस मनोदशा की बनावट को समझकर ही उनकी इन कविताओं के स्वरूप को समझा जा सकता है। इस संग्रह की कविताएँ उस दौर में लिखी गईं जब हमारे समाज में कुछ ऐसे परिवर्तन हो रहे थे जो आज भी वर्तमान हैं। कोई भी क्रांतिदर्शी लेखक किसी कुति का आदर्श सामने रखकर ता रचना करने नहीं बैठता, लेकिन संसार और साहित्य में होने वाले महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों से अछूता भी नहीं रहता। वे उसके अवचेतन में हलचल पैदा करते हैं। हिन्दी के अनेक प्रगतिशील कवियों और साहित्यकारों के लिए सोवियत संघ के पतन और उससे जुड़े समाजवादी व्यस्था वाले देशों के पराभव ने गहरी हताशा की स्थिति पैदा कर दी थी। इसके अतिरिक्त भारत

में विकास का एक ऐसा सिलसिला चला जिसके गरीबों को और गरीब बनाया और मनुष्यता का धीरे-धीरे ज्हास होता गया। यह स्थिति हिंसा और बर्बरता की देन थी। इस संग्रह की कविताएँ इसी भाव-दशा को चित्रित करती हैं। पीड़ित जन के संघर्ष के साथ लगाव होने के कारण अरुण कमल इसे वाणी दे सके हैं। हताशा और पराजय का भाव निहित होने पर भी इस काव्य-संग्रह में जीवित रहने और जीवन को बनाए रखने की एक कोशिश मौजूद है। इस काव्य-संग्रह को वर्ष १९९८ का साहित्य अकादमी पुरस्कार दिए जाने पर विद्वानों के बीच विवाद खड़ा हुआ और बहुत से आक्षेप भी लगाए गए, किन्तु इस कविताओं में गहरे डुबन पर जो जीवन की अर्थ-छवियाँ पाठक को मिलती हैं, उनसे वे सारे आक्षेप आप खारिज हो जाते हैं।

पुतली में संसार -

पुतली में संसार अरुण कमल का नवीनतम काव्य संकलन है जो सन २००४ में प्रकाशित हुआ। इसमें कवि की ५९ कविताएँ संकलित हैं। अरुण कमल की कविता उनकी गम्भीर और गहरी सोच का परिचय देते हैं। पुतली में संसार जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है- अपनी आँखों में पूरे संसार को शामिल करने की कवि की पहल है जहाँ किसान, मजदूर, दलित, स्त्री आदि का दुखी, उत्पीड़ित और शोषित जीवन अपना स्थान बनाता चलता है। उनके प्रति गहरी सम्वेदना, करुणा, प्रेम अभिव्यक्त करती ये कविताएँ मात्र अपने देश की स्थितियों की ही गाथा नहीं कहती बल्कि समूचे संसार के सच को सामने ला देती हैं। कवि की यह विश्वदृष्टि उसकी कविताओं को सार्वभौमिक बनाती है।

पुतली में संसार संग्रह का आरम्भ ही महाभारत के एक प्रसंग से होता है जिसे कवि आधुनिक सन्दर्भ से जोड़ता है। शासन-व्यवस्था के एकमात्र लक्ष्य (मछली की आँख की तरह) 'अपने हित चिन्तन' की ओर कवि संकेत करता है मानो वह अपील करता है कि इस घर को तोड़कर सम्वेदना का विस्तार करना चाहिए। केवल पुतली ही नहीं बल्कि उस पुतली में से झाँकते संसार को शामिल करना चाहिए। इस संग्रह ही अधिकांश कविताएँ गहरे दुख और विषादकी कविताएँ हैं। सभी किसी-न-किसी कारण से दुखी हैं। रोग, मृत्यु, भुखमरी का नजारा सभी तरफ दिखाई देता है। जीवन जीने के लिए चन्द जरूरत की चीजों से भी मनुष्य मोहताज होता जा रहा है :

दुनिया में इतना दुख है इतना ज्वर
सुख के लिए चाहिए बस दो रोटि और एक घर
और वही दिन-ब-दिन मुश्किल पड़ रहा है।

- आत्मकथ्य

ऐसे में पूर्णता की बात करना तो एक मिथ या यूटोपिया लगता है। जिन चीजों को मनुष्य जुटा पाता है वह भी क्या उसे सुख दे सकती हैं? मनुष्य मानो दुख भोगने के लिए अभिशप्त है। जहाँ 'सुख होगा तो शांति नहीं। शांति तो सुख नहीं'। यही इस बदलती हुई दुनिया का सच है :

नहीं कोई तुम्हें कुछ नहीं दे सकता
सब कुछ पाने के बाद भी बेचैन रहोगे

- आन्तरिक

अरुण कमल अपनी कविताओं में राजनीति को हमेशा स्थान देते हैं किंतु नारेबाजी या पोस्टर के रूप में नहीं बल्कि सत्ता द्वारा जनता के लगातार होते शोषण एवं उत्पीड़न को सामने लाने के लिए। ‘राजकीय सम्मान’, ‘बिछावन’, ‘वहों के चोर’, आदि इसी श्रेणी की कविताएँ हैं। शासक की तानाशाही जैसी स्वतन्त्रता से पूर्व थी वैसा आजाद भारत में भी बरकरार है। तभी तो ‘बिछावन’ कविता का ‘नेटिव’ वाइसराय के बिछावन से भी कहीं ज्यादा कीमती, कहीं ज्यादा गुदगुदा मन्त्रीजी के बिस्तर को पाता है। अर्थात्, शासक वर्ग हमेशा से अपने सुख-चैन, टाट-बाट के बारे में सोचता रहा है और आज भी स्थितियाँ जादा सुधारती नहीं जान पड़ती।

‘इन्तजार’ कविता में बिना आँखों वाले व्यक्ति का भी एक बार किताब झाड़ना या जो चल नहीं सकता उसके पास भी एटलस का होना इस ओर संकेत कर रहा है कि मनुष्य उम्मीद को बनाए रखे, आँखों में सपनों को सँजोए रखे। और यह तभी हो सकेगा जब वह संघर्ष की शक्ति को बनाए रखे। ‘डोर’ कविता में कवि ने इसीलिए श्रम की महत्ता का प्रतिपादित किया है। संचित धन के भरोसे पर न बैठकर अपने हाथों से मिट्टी खोदने की बात वाही गई है।

भारतीय सामाजिक संरचना में स्त्री की स्थिति को पहले भी उठाया जाता रहा है लेकिन ग्रामीण परिवार में रहने वाली स्त्री की वेदना को अरुण कमल ने बहुत गहराई से अपनी कविता में अभिव्यक्त किया है। चाहे भाई के वापस जाने के बाद चूल्हे की ओर लौटती नववधू हो (‘वापस’) या बार-बार मार खाकर ससुराल से भागने वाली विवाहिता (‘स्वप्न’), सभी के दर्द को यहाँ जमीन मिली है। स्त्री के संघर्ष और उसकी ‘मुक्ति की आकांशा’ को कवि ने धूमिल होने नहीं दिया है। संग्रह की एक लम्बी कविता है ‘घर-बाहर’ जो अरुण कमल के चीन और इंग्लैंड के यात्रा-प्रसंगों पर आधारित है। इसमें ग्यारह अलग-अलग कविताएँ शामिल हैं जो अपने आप में स्वतंत्र हैं। इनमें ‘बुद्धि मंदिर में’ कविता एकदम से ध्यान खींचती है। यहाँ कवि व्यंग्य के माध्यम से विडम्बनापूर्ण स्थितियों को सामने लाता है जो आज के भूमंडलीकरण की देन हैं। यहाँ अर्थशास्त्र का मुद्दा बड़ी गहराई से उठकर आता है जहाँ उदारीकरण और विश्वबाजार की बात होती है। वर्ल्ड बैंक और डब्ल्यू.टी.ओ. की नीतियों पर सहज ही यह कविता कुठराघात करती है

मेरे पास एक नया नोट है पॉच का
स्वीकार करोगे बुद्ध ?
रूपया चलेगा चीन में ?
या केवल युवान ?
डॉलर तो हरगिज नहीं बुद्ध को।
-घर-बाहर

पुतली में संसार की ये कविताएँ कम-से-कम शब्दों में अधिक से अधिक कहने का सामर्थ्य रखती हैं। यह अरुण कमल की अपनी शैली, अपना कहना का लहज़ा है जो कविता को एक अलग लय देता है। कवि ने अनेक स्थान पर वाक्य-विन्यास में एक साथ विस्तार और लघूता को आपने-सामने रखा है। यह उनकी कविता की बारीकी को बताता है और उनकी कवि-दृष्टि का परिचायक है। अरुण कमल अपने स्थानीय रंग से इस कदर जुड़े हैं कि आंचलिक शब्दों का भरपूर प्रयोग कविता में करते हैं। उनकी कविता स्थानीयता से होकर ग्लोबल की ओर मुड़ती है और यह सही भी है क्योंकि कोई भी बड़ा कवि स्थानिय हुए बिना

ग्लोबल नहीं हो सकता अतः - 'टुक', 'मेस', 'चुल्हा', 'खूँटा', 'बछिया' आदि देशज शब्दों का खुलकर उपयोग हुआ है। इस प्रकार पुतली में संसार अरुण कमल के विकास के अग्रिम चरण का सूचक है।

तुलसीदास अरुण कमल के प्रेरणास्त्रोत हैं। यानी उनकी उर्जा का एक स्रोत परम्परा में है। इसीलिए उन्होंने तुलसीदास की पार्वतीमंगल से लेकर विनय पत्रिका तक सारी कृतियों का गम्भीरता से अध्ययन किया और यह जान कि किस प्रकार साधारण से साधारण लगने वाली वस्तु और उसके किसी भी अंश को कविता में तब्दील किया जा सकता है और वह भी एकदम साधारण बोलचाल के लहजे में इस प्रकार अरुण कमल ने कविता की शक्ति को पहचाना और तुलसीदास की कविता से उन्हें बल मिला: “अरुण कमल ने समकालीन काव्य में स्वयं को एक सशक्त कवि के रूप में स्थापित किया है।”

अरुण कमल समकालीन काव्य में स्वयं को एक सशक्त कवि के रूप में स्थापित किया है।

